भारतीय संस्कृति का मूल गायत्री महामंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्

- श्रीराम शर्मा आचार्य

अखण्ड ज्योति

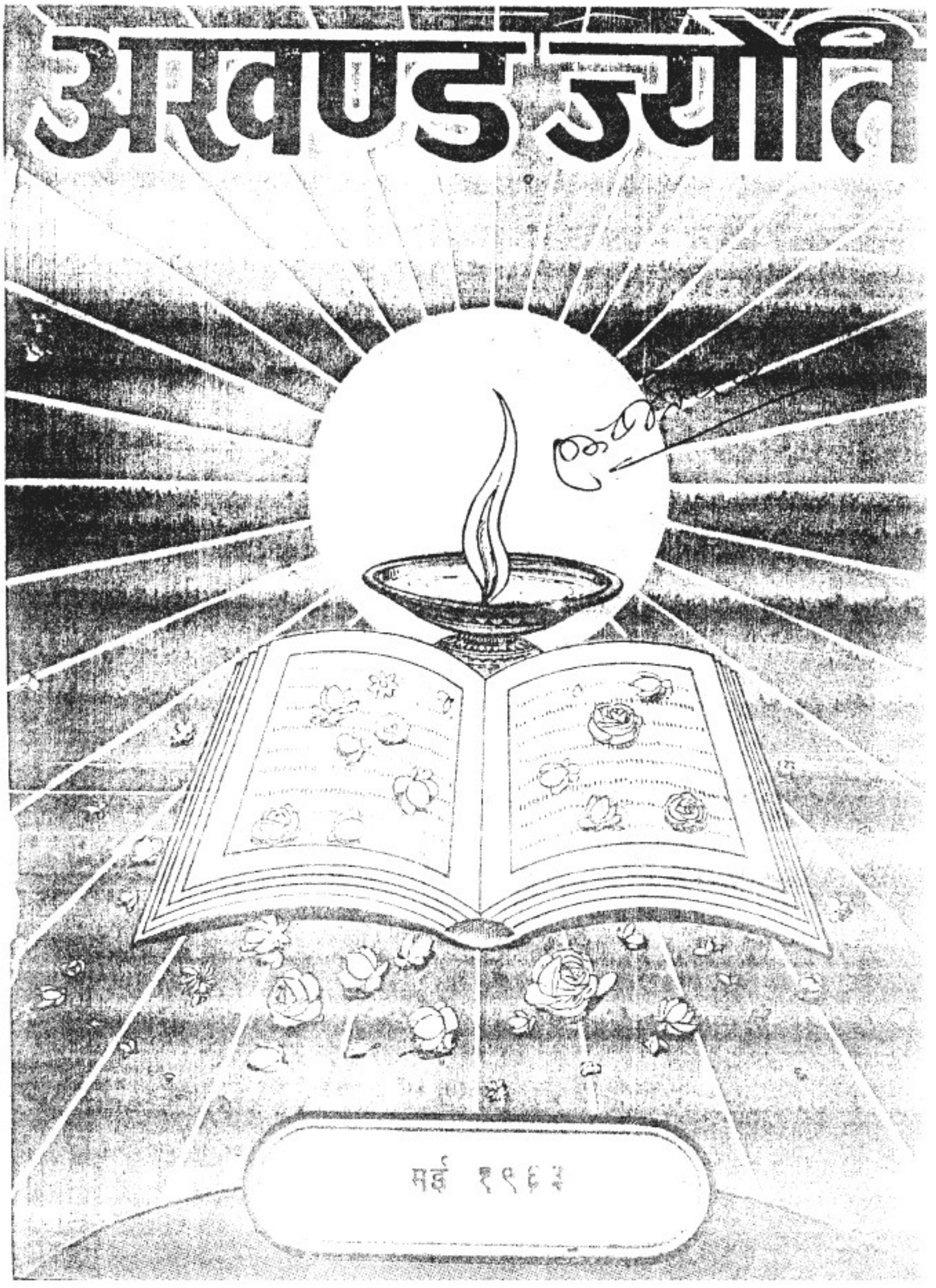

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

"अखण्ड ज्योति" के जनवरी, फरवरी १९६३ के अङ्क अब समाप्त हो गए हैं, इस लिए मार्च से ग्राहक बनाये जा रहे हैं। मार्च से बने ग्राहकों का चन्दा फरवरी ६४ में समाप्त होगा। जनवरी, फरवरी के अङ्कों की अब कोई सज्जन माँग न करें। इसी प्रकार अक्टूबर ६२ के अङ्क भी अब बिल्कुल समाप्त हो गये हैं। उसके भेजने में भी विवशता है।

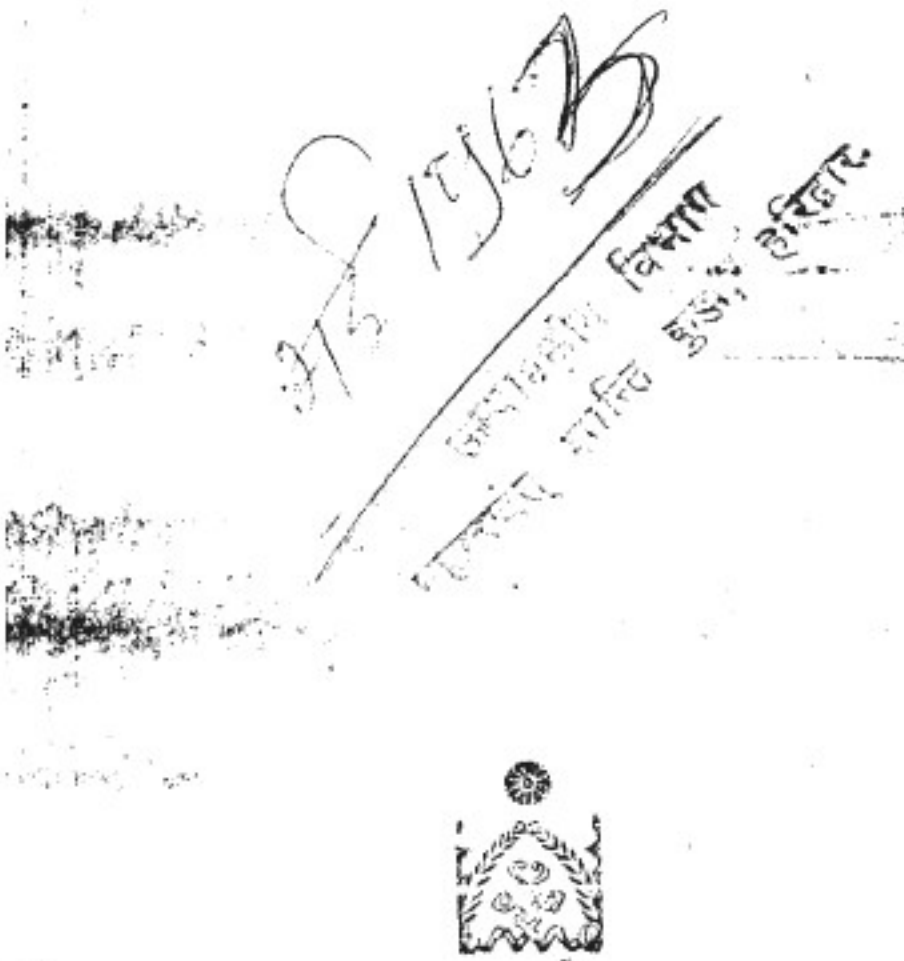

इस अंक में—

१.	मुक्तामा का गीत (कविता)	३
२.	आन्तरिक अशान्ति की समस्या और समाधान	४
३.	आत्म-विश्वास की शक्ति	७
४.	जीवन को सार्थक बनाया जाय	९
५.	विचारों की उत्कृष्टता का महत्व	१२
६.	परमार्थक प्रयत्नों में मानव जीवन की सार्थकता	१५
७.	हमारा दृष्टिकोण भी तो सुधरे	१८
८.	अशोका सर्वमेध	२१
९.	सरस और स्निग्ध जीवन	२२
१०.	शक्ति का स्रोत सघर्ष ही तो है	२४
११.	धर्म पुराणों की सत्कथाएं	२७
१२.	अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं से लड़पड़िये	२९
१३.	मधु-सचय	३२
१४.	सफलता के लिए क्या करें ? क्या न करें ?	३३
१५.	मानव-जीवन का अमृत-प्रेम	३६
१६.	परिवार-निर्माण के स्वर्णिम-सूत्र	३८
१७.	आर्थिक-समस्य की नाँव में	४१
१८.	जरा दूसरों का भी ध्यान रखिए	४४
१९.	दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावे	४६
२०.	बच्चों का सुधार कैसे हो ?	४९

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सम्पादकीय विभाग
ब्रह्मवर्चस् शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार

दूषित अहंभाव

जो अहंभाव जीवात्मा को संसार में फंसाता है, कञ्चन और कामिनी में मुग्ध कर देता है, वह अहंभाव वास्तव में बहुत दूषित है। यही अहंभाव जीव और आत्मा के बीच बहुत बड़ा भेदभाव उत्पन्न कर देता है। यही अहंभाव हमारे भीतर रह कर बोलता रहता है। पानी के ऊपर लाठी से चोट मारने पर उसके दो [illegible] पड़ते हैं, पर वास्तव में विचार करने पर जल एक ही होता है, केवल लाठी के कारण पृथक दिखाई देने लगता है। हमारा अहंभाव लाठी के समान है। उस लाठी को त्याग दो तो जल एक का एक ही है। यह दोषयुक्त अहंभाव का स्वरूप कैसा है? वह 'मैं' करके बोलता है, पर 'मैं' का आशय वह नहीं समझता। मेरे पास इतना धन है—मेरे पास ऐसे बड़े-बड़े आदमी आते हैं! अगर किसी ने 'मेरा' अपमान कर दिया या कुछ ले लिया तो उसे मारा पीटा जाता है, उसे हर तरह से तङ्ग किया जाता है, मुकदमा चलाया जाता है, उस समय अहंभाव यही कहता है कि इसने 'मेरा' अपमान क्यों किया?

कुछ लोग साधन, ज्ञान द्वारा अहंभाव को त्यागने का प्रयत्न करते हैं, पर अधिकांश लोगों में वह कुछ न कुछ बचा ही रहता है। चाहे जितना ब्रह्म-विचार करो पर अन्त में यह अहंभाव कभी न कभी सर ऊंचा किए बिना नहीं रहता। पीपल के पेड़ को आज काट डालो, पर दूसरे दिन सबेरे देखोगे तो उसमें दो-चार नये अंकुर उगे दिखाई ही पड़ेंगे। इसलिए सच्चे हृदय से ईश्वर का स्मरण करके उनका आश्रय लेने से ही दूषित अहंभाव से छुटकारा मिल सकता है।

—रामकृष्ण परमहंस

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

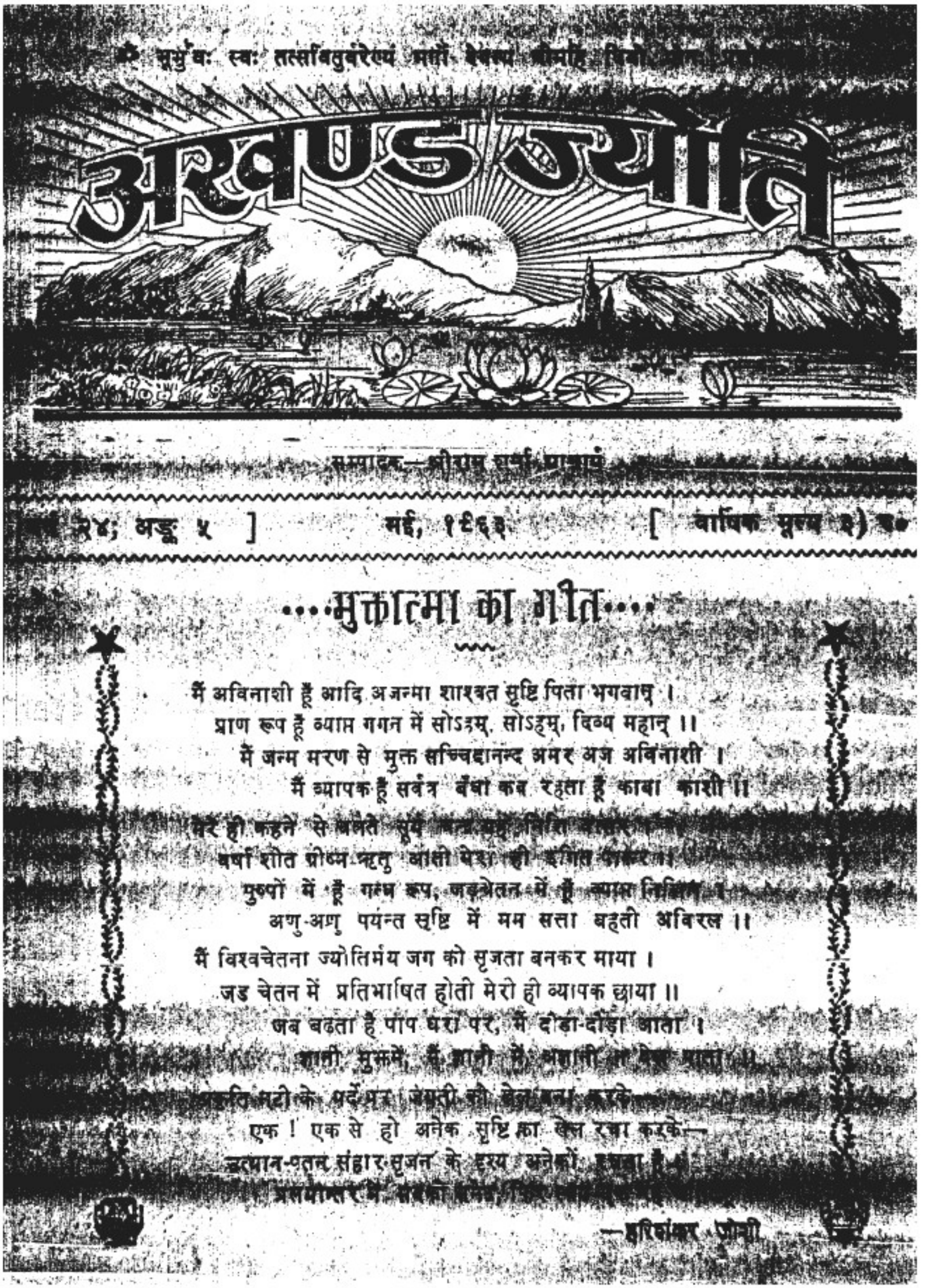

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आन्तरिक अशान्ति की समस्या और समाधान

एक मनुष्य के पास पर्याप्त साधन सम्पत्ति, जीवन निर्वाह की वस्तुएँ हैं, फिर भी वह उद्विग्न अशान्त परेशान-सा देखा जाता है। दूसरा उच्च शिक्षा सम्पन्न अच्छे पद पर प्रतिष्ठित होकर भी [illegible]-सा दिखाई देता है। व्यापारी विद्वान्, नेता, पण्डित, उच्चपद पर आसीन लोग इसी एक प्रश्न के समाधान के लिए परेशान मालूम पड़ते हैं। अधिकांश लोगों की एक ही शिकायत–सघर्ष, अशान्ति, क्लेश, परेशानी। नीचे से लेकर ऊपर तक अधिकांश व्यक्ति इसी प्रश्न के पीछे परेशान हैं। और [illegible] के प्रयत्न करते हैं, फिर भी, इसका [illegible] होता।

[illegible] की तरह धन का खेल होना चाहिए। गेंद को कोई अपने पास नहीं रखता, वह जिसके पास पहुँचती है वही उसे फेंक देता है। पैसे को इस तरह फेंकते रहें तो समाज शरीर में उसका प्रवाह जारी रहेगा और समाज का आरोग्य कायम रहेगा।"

—बिनोवा

[illegible] जीवन के इस प्रश्न का समाधान बाहरी [illegible] संसार में नहीं है। इसका समाधान [illegible] के अपने अन्दर है, वह है, जीवन व्यवहार में [illegible] को महत्व देना। हमारा बुद्धि बढ़ी है, किन्तु [illegible] अभी तक जड़ ही बना हुआ है। बुद्धि [illegible] पर व्यापार, शिक्षा, पाण्डित्य, विद्वता, उच्च [illegible] एवं जीवन का अन्य सभी तरह की सफलतायें [illegible] हैं किन्तु हृदय का व्यापकता विशालता [illegible] सफलताओं के बड़े-बड़े महल, उसी [illegible] और अटपटे लगते हैं जैसे सुनसान, [illegible] और किले। हृदय को जीवन शक्ति के [illegible] समस्त समृद्धि विद्वता, बड़प्पन [illegible] पद के मयावने भूत उसे ही खाने लगते हैं।

उस समय महात्मा बुद्ध को भी इसी भूत का सामना करना पड़ा था। वे राजपुत्र थे, अतुल सम्पत्ति थी। सुन्दर और भव्य भवन थे, मन बहलाने के बड़े-बड़े साधन थे। और सभी कुछ थे किन्तु बुद्ध को ये सब अटपटे लगे। आत्म प्रसाद, शान्ति, आनन्द, समाधान, बुद्ध को इस समृद्धि और राज महलों में नहीं मिला। वे इन सब अलकारों को छोड़ कर नीचे उतरे, अपनी इन दीवारों को तोड़ बुद्ध व्यापक बने, जन-मन के साथ एकता प्राप्त का और वे फिर राजमहल के राजकुमार से रंक बन कर असीम के साथ-मानवता के साथ-एकाकार हुए, [illegible] समृद्ध सुरक्षित [illegible] वस्त्र धारण कर अनन्त पथ के पथिक बने और जगत में कृत्रिमता से दूर प्रकृति के फैले विशाल आँचल में पशु-पक्षी, वनस्पति, नदी नाले, पहाड़ तक से अपने हृदय का जाड़ा। शबर, गिद्ध, केवट के हृदय से हृदय जोड़न वाले दशरथ सुत राम-जन मानस के राम-बन गये।

महात्मा गांधी ने [illegible] छोड़ा, जनता जनार्दन के समकक्ष उतर, वैसा ही पहना, वैसा ही खाया। अपने जीवन को अपनी विद्वता का निजी समृद्धि का आधार न बनाकर पीड़ित मानवता के कल्याण उन्नति प्रगति का आधार बनाया।

इसी तरह स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द, रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, मालवीयजी आदि ने अपनी समृद्धि, विद्वता, पाण्डित्य [illegible] नीचे उतर मानव [illegible] सेवा [illegible] जनार्दन की [illegible] लिए [illegible] से भी अधिक [illegible]

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

[illegible] क्लान्त मानवता के लिए। जनता [illegible] के लिए।

समृद्धि, रूप, पाण्डित्य, विद्वत्ता पद आदि का अभिमान ही वह चहारदीवारी है जो हमें [illegible] स्वरूप से दूर किए हुए हैं। अभिमान, अहंकार चाहे वह किसी भी गुण रूप वस्तु का क्यों न हो मनुष्य के वास्तविक सुख और आत्म प्रसाद से उसको दूर रखता है। जिसके दिल और दिमाग इस दम्भ की घेरेबन्दी में जकड़ा हुआ है, वह [illegible] दरिद्रता के प्रति अपने हृदय को जोड़ [illegible] शास्त्री पण्डित जब मानवता की पंक्ति [illegible] कर बैठेंगे, उच्चपद सम्पन्न लोग जब जनता जनार्दन की अर्चना में लगेंगे, तो उनका अहभाव सहज ही तिरोहित हो जायगा और उन्हें जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न का समाधान मिल सकेगा। जीवन की सच्चा सुख आत्म प्रसाद, आत्म शान्ति सन्तोष हृदय को मुक्त और असीम व्यापक बनाने से ही सम्भव है।

भर्तृहरि राजा थे। जब राज छोड़ कर वे सन्त बने और जीवन के उक्त प्रश्न का समाधान पाया तब उन्होंने कहा था "न राजा बड़ा है न तपस्वी, न विद्वान्, साधारण व्यक्ति भी यदि अपने जीवन और कार्यों से सन्तुष्ट है तो वही सबसे बड़ा है।"

स च भवति दरिद्री, यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे, कोऽर्थवान को दरिद्र॥

"जिसको तृष्णा अधिक है वही दरिद्री है। जिसका चित्त सन्तुष्ट है, उसके सामने न कोई धनी है न दरिद्री।"

मनुष्य अपने रूप, गुण, समृद्धि कीर्ति आदि के मोह को जिस क्षण हृदय से हटाकर मानवता के साथ पंक्ति में बैठ जायगा, जब अपने हृदय को असीम मानवता के साथ जोड़ लेगा तभी जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सहज ही हो जायगा।

मानव की आज यह स्थिति है कि दो व्यक्ति मिलकर भी एक साथ नहीं [illegible] भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, एक जगह काम करने वाले सभी में यह वृत्ति दिखाई देती है। व्यक्ति-व्यक्ति से लेकर यही बात समाज [illegible] जाति धर्म सभी में व्याप्त है। धरती पर मिला हुई समृद्धि, सीमा में रह कर भी मनुष्य चाहे तो प्रसन्न और शान्त रह सकता है किन्तु स्थिति इस कदर हो गई है कि लोग अपने-अपने सामने परसी हुई थालियों में [illegible] [illegible] [illegible]

व्यवहारिक मार्ग का प्रथम सूत्र है-सह अस्तित्व का मंत्र। स्वयं जियें और दूसरों को जीने दें। अपनी अपनी थाली में से सब बैठकर खावें। इसके बाद ही दूसरा सूत्र है "दूसरे के जीने के लिए मुझे सहयोग करना होगा।" जिसकी पराकाष्ठा अपने आपको मिटा देने तक रहती है। दूसरों को जीने के लिए अपने आपको मिटाने की भावना एक दूसरे के दिल [illegible] को जोड़ती है। एकाकार करती है। यही व्यक्ति से लेकर विश्व समस्या का मूल [illegible] है।

टालस्टाय ने कहा था "जिसके पास दो कोट हैं वह एक कोट उसे दे दे जिसके पास एक भी नहीं है। जिसके पास भोजन है वह भी ऐसा ही करे।" टालस्टाय ने आधुनिक व्यक्ति की समस्याओं को देखकर यही उपाय बताया कि मनुष्य अपनी समृद्धि के लिए ही नहीं वरन् दूसरों को जीने में मदद करने का भरपूर प्रयास करे। उन्हें जीवन बिताने में सहयोग दे।

महात्मा गान्धी ने भी यही मंत्र मानव जाति को दिया। उन्होंने दक्षिण में यात्रा करते हुए उस ग्रामीण महिला को देखा जो एक आधी-सी फटी हुई गीली धोती पहने खड़ी थी। गाँधी जी ने पूछा "तुम इसे सुखा क्यों नहीं लेती।" उसने कहा "क्या करूँ मेरे पास यही धोती है जो नहाने के उपरान्त मेरे ही शरीर पर सूखती है"। बापू की आँखों में पानी भर आया उन्होंने तत्काल अपनी चद्दर उतार कर दे दी और उसी दिन से प्रतिज्ञा की "जब तक मानव को तन ढकने को पूर्ण वस्त्र नहीं मिलेंगे मैं भी पूर्ण वस्त्र धारण नहीं करूँगा।" और वे आजीवन एक छोटी सी धोती एक चद्दर से काम चलाते रहे। यही परिधान था उनका बड़े-बड़े बादशाहों से मिलते समय भी।

हम भी अपने हृदय को दूसरों के लिए इसी तरह संवेदन शील बनाकर अपनी और विश्व की समस्याओं के समाधान में योग दे सकते हैं। जब परिवार में हम अपने लिए अच्छी माँग न रखकर दूसरों का ध्यान रखेंगे तो क्यों नहीं हमारा परिवार स्वर्गीय बनेगा? इसी तरह पड़ोस देश समाज जाति की यही आवश्यकता है जिसे अनुभव किए बिना मानव और विश्व की समस्या का समाधान न हो सकेगा।

गौतमी का इकलौता पुत्र मर गया। शोक से विह्वल होकर वह लाश को लिये हुए भगवान बुद्ध के पास पहुँची। उसे आशा थी कि तथागत बालक को पुनः जीवित कर देंगे।

बुद्ध ने गौतमी को शान्तवना देते हुए कहा—किसी ऐसे घर से थोड़ा जल मांग लाओ, जिसके घर में कभी कोई मृत्यु न हुई हो। उस जल को अभिमंत्रित करके तुम्हारे पुत्र का अभिसिंचन करूँगा और वह पुनः जीवित हो उठेगा।

गौतमी-जल प्राप्त करने के लिए द्वार-द्वार पर घूमने लगी, पर कोई घर ऐसा न मिला—जहां किसी की मृत्यु न हुई हो। निराश वह वापिस लौट आई।

तथागत ने कहा—भद्रे तुमने देखा, इस संसार में कोई घर ऐसा नहीं जिससे किसी की मृत्यु न हुई हो। इसी प्रकार कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे मरना न पड़े। आज या कल, सभी अपने-अपने समय पर मरते हैं—फिर इस अल्पिपन्न प्रकृति फन्द में फँसे हुए हम लोगों में क्यों किसी के लिए शोक करना चाहिए।

गौतमी का बोध जग पड़ा। वह मृत पुत्र का संस्कार करके घर लौट गई। शोक को उसने विवेक द्वारा शान्त कर दिया।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

=: आत्म विश्वास की शक्ति :=

जीवन के सभी क्षेत्रों में सफल होने के लिए आत्म-विश्वास की आवश्यकता होती है। अच्छे से अच्छा तैराक भी आत्म विश्वास के अभाव में किसी नदी को पार नहीं कर सकता। वह बीच में ही फँस जायगा, नदी के प्रवाह में बह जायगा, अथवा हाथ पैर पटक कर वापिस लौट आयेगा। यही बात भव-सागर पार करने में भी लागू होती है। जीवन में अनेकों कठिनाइयाँ उलझनें, अप्रिय परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इन झंझावातों में कठोर चट्टान की तरह अपनी राह पर अडिग रहने के लिए आत्म-विश्वास की आवश्यकता होती है।

लक्ष्य जितना बड़ा होगा, मार्ग भी उतना ही लम्बा होगा और अवरोध भी उतने ही अधिक आयेंगे, इसलिए उतने ही प्रबल आत्मविश्वास की आवश्यकता होगी। संसार भी आत्म विश्वासी का समर्थन करता है। आत्म विश्वास चहरे पर वह आकर्षण बन कर फूट पड़ता है जिससे पराये भी अपने बन जाते हैं। अनजान भी हमराही की तरह साथ देते हैं। विपरीत परिस्थितियाँ भी आत्म-विश्वासी के लिए अनुकूल परिणाम प्रदान करती हैं।

आत्म विश्वास का मूल स्वरूप है-आत्म सत्ता पर विश्वास करना। जिसे अपनी आत्मा की अजेय शक्ति, महानता पर विश्वास है, जो अपने जीवन की सार्थकता, महत्ता, महानता स्वीकार करता है उसी में आत्मविश्वास का स्रोत उमड़ पड़ता है। और वही जीवन पथ के अवरोधों कठिनाइयों को चीरता हुआ, राह के रोड़ों को धकेलता हुआ, अपना मार्ग स्वयं निकाल लेता है। प्रकृति भी आत्मविश्वासी पुरुष का साथ देती हैं अपने नियमों का व्यतिरेक करके भी।

अपने आपको तुच्छ, अनावश्यक समझने वाले संसार सागर में तिनके की तरह कभी इधर कभी उधर थपेड़े खाते हैं। जिन्हें अपनी आत्म सत्ता, अपने महान् अस्तित्व का बोध नहीं, उन्हें जीवन के समराङ्गण में हारना पड़े तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जो अपने आपको तुच्छ और अनावश्यक समझते हैं उन्हें दूसरे कैसे आवश्यक और महत्वपूर्ण समझ सकते हैं? आत्म विश्वास के अभाव में सन्देह, भय, चिन्ता आदि मनोविकार पनप उठते हैं और तब दूसरों का विश्वास औरसीयता [illegible] प्राप्त नहीं होती।

मनुष्य जैसा अपने आपको [illegible] व्यक्तित्व, आत्मिक स्तर भी वैसा हो जायेगा। [illegible] शिक्षा, साधन, सम्पत्ति पाकर भी [illegible] विश्वास के अभाव में तुच्छता एवं हीनता का अनुभव करते हैं और जीवन में कोई विशेष सफलता अर्जित नहीं कर पाते। वे जीवन [illegible] परिस्थितियों के थपेड़े खाते, रोते झींकते [illegible] गुजार देते हैं। साधन सुविधा एवं [illegible] भी वे कष्टकारक जीवन बिताते हैं। किन्तु आत्म-विश्वासी सामान्य परिस्थितियों में [illegible] जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करता है।

नेपोलियन की सेना आगे बढ़ रही थी, मार्ग में आल्पस पर्वत पड़ा। सिपाही रुक गये। सेनापति ने नेपोलियन को सूचना दी, इस पर नेपोलियन ने मुस्कराते हुए कहा 'सेनापति! कोई बात नहीं, आल्पस हमारा रास्ता रोकता है तो आल्पस नहीं रहेगा।" और उस दुर्गम पर्वत को काट [illegible] सेना के लिए रास्ता बना लिया गया। यह आत्म-विश्वास का चमत्कार है। दुनियाँ में जो कुछ महत्व-पूर्ण बातें दिखाई पड़ती हैं उनकी नींव मनुष्य के प्रबल आत्म विश्वास पर रखी गई थी। नेपोलियन की विजय में प्रमुख हाथ था उसके आत्म विश्वास का। वह बड़े ही विश्वास के साथ कहता था "वह गोली अभी नहीं बनी है जो नेपोलियन को मारेगी" और एक-एक युद्धमें उसे विजय भी मिलती गई। इसका

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इतिहास साक्षी है। आत्म विश्वास की धरती में से ही पुरुषार्थ का अंकुर फूट निकलता है और पुरुषार्थी ही "वीर भोग्या वसुन्धरा" पर स्वर्गीय जीवन का सृजन करता है। अपने आपको दीन, हीन, मलिन, पतित समझने वाले धरती पर बोझ ही बढ़ा सकते हैं, वे ही इस "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती को नरक तुल्य बना देते हैं।

आत्म विश्वास की ज्योति को जलाने, उसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए आन्तरिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। जो मनुष्य अपने मानसिक विकार, चिन्ता, भय, क्रोध, सन्देह आदि से ग्रस्त है वह स्वाधीन नहीं कहला सकता। वह तो परतन्त्र है उसे ये विकार अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ भटकाते हैं। ऐसी परतन्त्रता में आत्म विश्वास का निवास नहीं होता। जो अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन पर स्वयं शासन करता है वही आत्म विश्वास की शक्ति को प्राप्त कर सकता है। और इसी से मनुष्य की साधारण शक्तियाँ भी असाधारण बन जाती है। सोने, तांबे के सामान्य तारों का कोई महत्व नहीं होता किन्तु जब उनमें विद्युत प्रवाह बह उठता है तो वे बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विद्या, धन शक्ति, साधन, सम्पत्ति यह कोई महत्व नहीं रखते, यदि उनसे चेतना केन्द्र-आत्म विश्वास जाग्रत नहीं होता।

आत्म विश्वास की वृद्धि के लिए उत्तरदायित्वों एवं जिम्मेदारियों का स्वागत कर उन्हें स्वीकार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक जिम्मेदारी के लिए पूर्ण लगन और श्रम से कार्य करके उसे सफल बनाने का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। छोटी-छोटी जिम्मेदारियों को पूरा करते ही मनुष्य में आत्म विश्वास की नींव मजबूत होने लगती है। जिस उत्तरदायित्व को ग्रहण करने का अवसर आये उसे सहर्ष ग्रहण किया जाय। उससे बचने की, घबराने की वृत्ति आत्मविश्वास को नष्ट करती है। विभिन्न जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए ही मनुष्य महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादन करने की क्षमता और आत्म विश्वास प्राप्त करता है।

जीवन में जो आदर्श निश्चित किए जाँय जो आकांक्षायें बनायें, उन्हें जी जान से, तत्परता से, पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाय। छोटी-छोटी सफलताओं से ही मनुष्य का आत्म विश्वास बढ़ता है। किसी भी क्षेत्र में दृढ़ निश्चय और प्रयत्न से सफलता किसी न किसी मात्रा में अवश्य मिलेगी, जिससे आत्म विश्वास जगेगा। खासकर जिन बातों में मनुष्य को डर, सन्देह घबराहट महसूस हो उनमें तो प्रयत्नपूर्वक हाथ डालना आवश्यक है! क्योंकि आत्म विश्वास के ये प्रबल शत्रु हैं। अन्धेरे से डरने वाले यदि प्रयत्नपूर्वक अन्धेरे में जावें तो उनका अंधेरे का डर दूर हो जाय। जिस काम में हाथ डालने से दुर्बलता के कारण हिचकिचाहट हो उस काम को अवश्य किया जाय।

जीवन में थोड़ी बहुत गल्तियाँ एवं असफलता होना भी स्वाभाविक हैं। उनको सदा के लिए भुला देना ही श्रेयस्कर होगा। उनके बारे में अधिक सोच विचार न किया जाय। पिछली भूलों की उपयोगिता तो इसी में है कि उनसे अनुभव प्राप्त कर भविष्य में वैसा न किया जाय। असफलताओं, पिछली भूलों का चिन्तन करते रहने पर दिनों दिन आत्म विश्वास ही नष्ट होता है।

आत्म विश्वास की वृद्धि के लिए ईश्वर पर श्रद्धा और निष्ठा रखना एक सरल मार्ग है। ईश्वर पर आस्था रखने से उसकी अनन्तता, व्यापकता पर विश्वास रहता है। साथ ही इससे आत्मिक विकारों का समाधान होता है। और मन को शान्ति मिलती है, जो आत्म विश्वास को जाग्रत करने के लिए आवश्यक तत्व है।

संसार के बड़े-बड़े कार्य आत्म विश्वास से ही सम्पन्न हुए हैं। प्रबल आत्म विश्वास सम्पन्न लोगों ने ही संसार का नेतृत्व किया है। नया प्रकाश-नया मार्ग दिखाने वाले प्रबल आत्म विश्वासी ही रहे हैं हमें आत्म विश्वास का महत्व समझना चाहिए और उसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* जीवन को सार्थक बनाया जाय *

मनुष्य की अन्तरात्मा में ईश्वरीय तत्व का, सतोगुण का, जितना प्रकाश बढ़ता है, उतना ही परमार्थ बुद्धि जागृत होती है। जो जितना स्वार्थी है, जिसकी भावनाऐं जितनी संकीर्ण हैं, दूसरों के दुख दर्द में जिसे जितनी अरुचि है उसे उतना ही नीच, क्षुद्र या पतित कहना होगा। [illegible] का-तमोगुण का चिन्ह एक ही है—केवल अपनी ही बात सोचना। यह भावना जब इतनी [illegible] है कि दूसरों को हानि पहुंचा कर भी अनुचित और अधर्म करके भी, अपना लाभ [illegible] तो उसे असुरता कहते हैं। [illegible] की गति विधियां ऐसी ही होती हैं, [illegible] छोटे लाभ के लिये दूसरों का बड़े से बड़ा [illegible] कर डालने में सकोच नहीं करते।

[illegible] का चिन्ह यह है कि दूसरों की सुख-सुविधाओं का-उनके उचित अधिकारों का, ध्यान रखते हुए ही अपनी सुविधा एवं उन्नति की व्यवस्था करे। न ति और सदाचार पूवक उन्नति करने का मार्ग मनुष्यों का है। देवता उन्हें कहते हैं जो अपने स्वार्थों की हानि सहन करके भी दूसरा की सुख-सुरक्षा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। अपनी उन्नति रोक कर भी दूसरों को उन्नतिशील बनाने में प्रसन्न होते हैं। दूसरों के सुख में अपना सुख और उनके दुख में अपना दुख समझ कर जो परमार्थ में सलग्न रहते हैं, इसके लिए अपने स्वार्थों को भुला देते हैं। ऐसे त्यागी और परमार्थी व्यक्ति देवता कहे जाते हैं। जहां देवताओं का निवास होता है वहां स्वर्ग बन जाता है। स्वर्ग में किसी बात की कमी नहीं रहती, दुख दारिद्र भी वहां फटकने नहीं पाते।

आध्यात्मिक उन्नति की परीक्षा इसी कसौटी पर की जाती है कि मनुष्य का स्वार्थ कितना घटा और परमार्थ कितना बढ़ा है। भजन पूजन यदि सच्चा हो तो उसका प्रतिफल इसी रूप में परिलक्षित होना चाहिए। तृष्णा और वासनाऐं निम्न स्तर की मनोभूमि में बढ़ी चढ़ी रहती है। जैसे-जैसे आन्तरिक स्तर बढ़ता है वैसे-वैसे मनुष्य संयम और सेवा की बात सोचने लगता है। [illegible] नहीं त्याग की वृत्ति बढ़ती है [illegible] स्वार्थ कैसे सधे ? यह सोचने की अपेक्षा उसका [illegible] यह रहती है कि जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरे उठा सकें, ऐसा कुछ करते [illegible]

[illegible] जानता है, किसी भी प्रकार के [illegible] नहीं है, और है [illegible] और जिसकी निष्ठता दृढ़ होती है, [illegible] प्राप्त रहने के लिये [illegible] जाती है।

कई व्यक्ति केवल अपने [illegible] उद्देश्य से भजन करते हैं, कामनाओं से प्रेरित होकर उनके अनुष्ठान चलते हैं, स्वर्ग और मुक्ति की, ऋद्धि और सिद्धि की प्राप्ति के मनोरथ को पूर्ण करना ही उनको ईश्वर भक्ति का प्रयोजन रहता है। आध्यात्म क्षेत्र का यह निम्नतम स्तर है। इसी प्रकार बाह्य जीवन में जिन्हें अपनी सुख सुविधाएं बढ़ाने के लिये प्रयत्न-सलग्न देखते हैं वे भी नीचे स्तर के ही लोग माने जायेंगे। जिस देश समाज में लोगों का आन्तरिक स्तर नीचा रहता है वहां कोई महत्वपूर्ण प्रगति दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। आन्तरिक सन्तोष एवं उल्लास का आधार परमार्थ ही माना गया है। जिसकी अन्तरात्मा सेवा, पुण्य, परोपकार और उदारता की भावनाओं से ओत-प्रोत रहतीहै वस्तुतः वही महान है। कर्तव्य पथ पर बढ़ते रहने का जिसमें जितना साहस है उसे उतना बड़ा बलवान और योद्धा माना जा सकता है। पुण्य और परमार्थ के मार्ग पर चलते हुए जो कठिनाइयां सहन करनी

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पड़तो हैं उन्हें जिसने हँसते हँसते बिना किसी शिकायत के उठा लिया वस्तुतः उसे ही महापुरुष कहा जायगा। जहाँ ऐसे नर रत्नों का बाहुल्य होता है वह देश जाति धन्य बन जाता है।

ईश्वर अपने दिये हुये पुण्यों के बदले में कृतज्ञता चाहता है, सूर्य और पृथ्वी के बदले में नहीं।

—रवीन्द्र

जब कभी किसी निर्धन व्यक्ति में मैं अधिक कृतज्ञता पाता हूँ तो मुझे विश्वास हो जाता है कि यदि वह धनी होता तो उसमें उतनी ही दान-शीलता होती।

—पोप

मानव प्राणी में उसकी विकसित चेतना ही [illegible] एवं महत्ता का कारण है। यदि यह चेतना [illegible] सुरझाई, अतृप्त एवं अविकसित ही पड़ी रहे [illegible] जीवन की सार्थकता कहाँ हुई? आत्मा [illegible] सुख न माना अन्तःकरण यदि विकसित न हुआ तो शरीर के मोटे हो जाने या इन्द्रियों की ही लालसा [illegible] होने से क्या प्रयोजन सधा? घोड़ा जलेबी खावे और मालिक भूखा मरे तो इस व्यवस्था को कौन प्रशंसा करेगा? आत्मा की तृप्ति का कोई प्रयत्न न हो और शरीर ही मौज मजा करता रहे तो यह कहाँ का बुद्धिमत्ता कहा जायगी?

जिस प्रकार शरीर की सुविधा की दृष्टि से धन, मकान, वाहन, नौकर, वस्त्र आदि को सुखदायक उपकरण माना गया है उसी प्रकार आत्मा की [illegible] सद्गुण होते हैं। उन्हें ही दैवी सम्पत्ति कहते [illegible] दैवी सम्पत्ति को प्राप्त करके ही [illegible] सुखी एवं समुन्नत अनुभव करती [illegible] को तृप्ति देने वाला वातावरण केवल [illegible] अभिवृद्धि से ही संभव होता है। सद्-भावनाओं से खाली हृदय सदा श्मशान की तरह सूना और भयंकर बना रहता है। उसमें सन्तोष, शान्ति, आनन्द एवं उल्लास का एक कण भी विकसित नहीं हो सकता। सद्गुणों के बीज ही अन्तःकरण की उर्वर भूमि में उपज कर आत्म-सन्तोष की हरियाली का रूप धारण करते हैं। जहाँ बीज ही न होगा वहाँ पौदा कैसे उपजेगा? आन्तरिक सद्-भावनाऐं ही भीतरी शान्ति और बाहरी सुख रूप तानाबाना बुनती हैं और उसी के आधार पर कोई व्यक्ति सुविकसित एवं समुन्नत दिखाई पड़ता है।

सत्कर्मों के द्वारा पुण्य फल स्वर्ग आदि प्राप्त होने का जो लाभ—प्राप्त होता है उसका कारण यह है कि सत्कर्मों के द्वारा सद्भावनायें परिपुष्ट होती हैं। कोई व्यक्ति मन-ही-मन उत्तम विचार तो रखे रहे पर उन्हें कार्य रूप से परिणित न करे तो वे विचार ऊसर भूमि में पड़े हुये कमजोर बीज की तरह निरर्थक ही रहेंगे। उनका सत्परिणाम तभी मिलेगा जब वे कार्यान्वित हों। विचारों की परिपक्वता का चिन्ह उनके अनुरूप कर्मों का आरम्भ होना है। उच्च विचारे यदि बलवान होकर [illegible] अनुरूप उत्कृष्ट कार्य भी अवश्य हो जाने लगते तो विचार तो अच्छे-अच्छे रखता है [illegible] करने के अवसर नहीं आने देता, तो समझना चाहिये विचार केवल कल्पना जैसे धुँधले हैं उनमें प्रौढ़ता और परिपक्वता नहीं आने पाई। जिन विचारों में गहरी आस्था होगी वे कार्य रूप में परिणत हुए बिना नहीं रह सकते।

कर्म से ही विचार परिपक्व होते हैं। परिपक्व विचारों का ही समुचित प्रतिफल प्राप्त होता है कर्मों को देखकर ही किसी व्यक्ति की भावनाओं की परखा जाता है। और उन्हीं के अनुरूप भला य बुरा परिणाम मिलता है। मन-ही-मन किसी के प्रा [illegible] बुरे या भले भाव करते रहे [illegible] उन्हीं का [illegible] होकर सामने आते [illegible] की सबसे बड़ी शक्ति और श्रेष्ठता मानी जाती है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

वे सजीव तभी कहलाती हैं जब उनमें कार्यान्वित होने के लायक प्रेरणा मौजूद है। सत्कर्मों के करते रहने से सद्भावनाओं की पुष्टि होती है।

मानव जीवन की सार्थकता इस बात पर निर्भर है कि उसमें कितनी उत्कृष्ट भावनाएँ भरी हुई हैं। भावनाओं की उत्कृष्टता सजीवता और प्रौढ़ता सत्कर्मों से परखी जाती है। इसलिए सत्कर्मों को लोक और परलोक की सुख शान्ति का श्रेष्ठ साधन माना गया है। सत्कर्म करते रहने से ही भावनाएँ बलवती एवं परिपुष्ट होती हैं। निरंतर कर्मान्वित होते रहने पर ही वे संस्कार का रूप धारण करती हैं। सस्कारों के आधार पर ही स्वर्ग एवं पुनर्जन्म की सुखद स्थिति का निर्माण होता है और उन्हीं के आधार पर स्वभाव बनता है। जिन स्वभाव संस्कारों को लेकर प्राणी जन्मताहै वे बहुधा वही होते हैं जो उसके पूर्व जन्म में विचार और कार्यों के समन्वय से परिपक्व किये गये थे।

अगला जन्म हमें कहाँ कैसी परिस्थितियोंमें मिले, इसकी तैयारी के लिये अपनी कार्यपद्धति में सत् असत् के लिये स्थान निर्धारित कर लेना चाहिए। जिन्हें नरक की—क्लेश, द्वेष, रोग, शोक की निकृष्ट परिस्थितियाँ अभीष्ट हों उन्हें बुरे विचारों को, बुरे कामों को अपनाये रहना चाहिए। धीरे-धीरे कुसंस्कारों की परिपुष्टता होती जायगी और अगला जन्म दुर्दशाग्रस्त परिस्थितियों में होगा। जिन्हें स्वर्गीय सुख शान्ति से परिपूर्ण भविष्य की आकांक्षा हो उनके लिये केवल एक ही मार्ग शेष रहता है कि अपना हृदय उदार बनावें और उदारतापूर्ण श्रेष्ठ सत्कर्मों को दैनिक जीवन में प्रमुख स्थान देते रहें। हमारी कार्यपद्धति ही भाग्य रेखा बनती है उसी के आधार पर भविष्य रचा जाता है, प्रारब्ध लिखा जाता है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह अपनी प्रवृत्तियों और कृतियों के आधार पर ही अपने भविष्य को उज्ज्वल या अन्धकारपूर्ण बनाता रहता है।

सबसे बड़ा स्वार्थ साधन परमार्थ ही है। परमार्थ अर्थात् परम स्वार्थ। छोटे और ओछे, संकीर्ण और घृणित स्वार्थ की ही निन्दा की गई है। पर जिससे अपना लोक परलोक का आत्मिक हित साधन होता हो उस स्वार्थ को—परमार्थ को—निन्दित नहीं प्रशंसनीय ही कहा जायगा। आजीविका कमाना एक आवश्यक कार्य है, मनोरंजन एवं शरीर सुख का भी ध्यान रखा जाना चाहिए पर इतने तक ही यदि सारी गतिविधियाँ सीमित हो जावें तो यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य जीवन जैसे बहुमूल्य सौभाग्य को कौड़ी मोल बर्बाद किया जा रहा है। सद्भावनाओं और सत्कर्मों के समन्वय से जो आत्मिक सन्तोष मिलता है, आन्तरिक उल्लास और आनन्द का जैसा रसास्वादन मिलता है उससे अधिकांश लोग अपरिचित ही रहते हैं। जिन बेचारों ने उस अमृत को चाखा ही नहीं वे तुच्छ स्वार्थों को महत्व देते रहते हैं। पर जिन्होंने उच्च स्तर में प्रवेश करके उत्कृष्ट भावनाओं और श्रेष्ठ सत्कर्मों से अपने जीवन क्रम को समाविष्ट किया उन्हीं का नर तन धारण करना सार्थक होता है।

हम में से प्रत्येक को जीवन का सही मूल्यांकन करना चाहिए और अपनी समय सम्पति का एक भाग उन कार्यों के लिये सुरक्षित रखना चाहिए। कमाने, खाने को, कठिनाई और सुविधाओं की चिंता तो करनी चाहिए, दैनिक जीवन को समस्याओं को सुलझाने की ओर ध्यान भी देना चाहिये पर उन्हीं में इतना निमग्न रहना उचित नहीं कि आत्मा, के हित साधन की उपेक्षा ही होने लगे। पशु वृत्ति को लेकर जिन्दगी के दिन पूरे कर लेने में कोई समझदारी नहीं। बुद्धिमान वे हैं जो लोक, परलोक की, धर्म और कर्तव्य की, पुण्य और परमार्थ की ओर भी प्रसन्न पूर्वक अग्रसर होते रहते हैं। हमें अपने पद, सौभाग्य और उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुये वह भी सोचना और करना चाहिए जिस पर जीवन की सफलता और सुख शान्ति निर्भर है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

···· विचारों की उत्कृष्टता का महत्व ····

जीवन में विभिन्न सफलता असफलताओं एवं परिस्थितियों का बहुत कुछ आधार मनुष्य के अपने विचार ही होते हैं। किसी भी क्रिया के पहले तत्सम्बन्धी विचारों का गठन होता है। प्राकृतिक नियम ही कुछ ऐसा है जिसके अनुसार मनुष्य जैसा सोचता है ठीक वैसा ही बनता जाता है।

सम्बे-तत्व चिन्तन, दार्शनिक विचारों की साधना ने बुद्ध को जीवन के सीमित बन्धनों को तोड़ कर असीम की ओर प्रेरित किया। गुलामी में होने वाले अत्याचार, अपमान, अमानवीय व्यवहार ने गाँधीजी को स्वतन्त्रता के संघर्ष का क्रान्ति-दूत बना दिया। इसी तरह समस्त संसार पर एकाधिपत्य करने के विचार से सिकन्दर ने अपना जीवन ही दूसरे देशों पर आक्रमण करने में लगा दिया। देश प्रेम और आजादी के विचारों में मग्न अनेकों भारतीय देश भक्तों ने हँसते-हँसते जीवन का उत्सर्ग किया। संसार के रंगमंच पर जितने भी उत्कृष्ट, निकृष्ट कार्य हुए उनके पीछे तत्सम्बन्धी विचारों का अस्तित्व ही मुख्य कारण रहा।

> "जैसे प्राणियों के सिर पर मृत्यु का भय सर्वदा सवार रहता है वैसे ही धनवान को राजा, अग्नि, चोर और कुटुम्ब का भय सदा बना रहता है।
>
> "यदि धन बहुत सा इकट्ठा हो जाय तो वह पाले हुए शत्रु के समान है। उसका छोड़ना भी कठिन हो जाता है।"
>
> —वेदव्यास

कुए में मुँह करके आवाज देने पर वसी ही प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। संसार भी इस कुए की आवाज की तरह ही है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसी ही प्रतिक्रिया वातावरण में होत है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही उसके आस-पा का वातावरण बन जाता है। मनुष्य के विचा शक्ति शाली चुम्बक की तरह हैं जो अपने समान धर्मी विचारों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं एक ही तरह के विचारों के घनीभूत होने पर वैसे ही क्रिया होती है और वैसे ही स्थूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

विचार एक प्रचंड शक्ति है और वह भ असीम अमर्यादित, अणु शक्ति से भी प्रबल। विचा जब घनीभूत होकर संकल्प का रूप धारण कर लेत है तो प्रकृति स्वयं अपने नियमों का व्यतिक्रम करके भी उसको मार्ग दे देती है। इतना ही नहीं उसके अनुकूल बन जाती है। मनुष्य जिस तरह के विचार को प्रश्रय देता है, उसके वैसे ही आदर्श, हावभाव रहन सहन ही नहीं शरीर में तेज, मुद्रा आदि भी वैसे ही बन जाते हैं। जहाँ सद् विचार की चतुरता होगी वहाँ वैसा ही वातावरण बन जायगा। ऋषियों के अहिंसा सत्य प्रेम न्याय के विचारों से प्रभावित क्षेत्र में हिंसक पशु भी अपनी हिंसा छोड़ कर अहिंसक पशुओं के साथ विचरण करते थे।

जहाँ घृणा द्वेष क्रोध आदि से सम्बन्धित विचारों का निवास होगा वहाँ नारकीय परिस्थितियों का निर्माण होना स्वाभाविक है। मनुष्य में यदि इस तरह के विचार घर कर जाँय कि मैं अभागा हूँ, दुःखी हूं दीन हीन हूं तो उसका उत्कर्ष कोई भी शक्ति साध नहीं सकेगी। वह सदैव दीन हीन परिस्थितियों में ही पड़ा रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य में सामर्थ्य, उत्साह, आत्मविश्वास गौरवयुक्त विचार होंगे तो प्रगति-उन्नति स्वयं ही अपना द्वार खोल देगी।

किसी भी शक्ति का उपयोग रचनात्मक एवं

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ध्वंसात्मक दोनों ही रास्तों से होता है। विज्ञान की शक्ति से मनुष्य के जीवन में असाधारण परिवर्तन हुआ। असम्भव को भी सम्भव बनाया विज्ञान ने। किन्तु आज विज्ञान के विनाशकारी स्वरूप में मनुष्यता का भविष्य ही अंधकारमय दिखाई देता है। जन मानस में बहुत बड़ा भय व्याप्त है। ठीक इसी तरह विचारों की शक्ति पुरोगामी होने से मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का द्वार खुल जाता है और प्रतिगामी होने पर वही शक्ति उसके विनाश का कारण बन जाती है। गीताकार ने इसी सत्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है "आत्मैव ह्यात्मनो—बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनु" विचारों का केन्द्र मन ही मनुष्य का बन्धु है और वही शत्रु भी।

आवश्यकता इस बात की है कि विचारों को निम्न भूमि से हटाकर उन्हें ऊर्ध्वगामी बनाया जाय जिससे मनुष्य की उन्नति और उसका कल्याण सध सके। दीन हीन क्लेश एवं दुःखों से भरे नारकीय जीवन से छुटकारा पाकर मनुष्य इसी धरती पर स्वर्गीय जीवन का उपलब्धि कर सके। वस्तुतः सद् विचार ही स्वर्ग और कुविचार ही नरक की एक परिभाषा है। अधोगामी विचार मन को चंचल क्षुब्ध असन्तुलित बनाते हैं। उन्हीं के अनुसार दुष्कर्म होने लगते हैं। और इन्हीं में फँसा हुआ व्यक्ति नारकीय यन्त्रणाओं का अनुभव करता है। सद्विचारों में डूबे हुए मनुष्य को धरती स्वर्ग जैसी लगती है। विपरीतताओं में भी वह सनातन सत्य का दर्शन कर आनन्द का अनुभव करता है। साधन सम्पत्ति के अभाव, जीवन के कटु क्षणों में भी वह स्थिर और शान्त रहता है। शुद्ध विचारों के अवलम्बन से ही मनुष्य को सच्चा सुख मिलता है।

विचारों के ऊर्ध्वगामी बन जाने पर नित्य जीवन के सम्पर्क में आने वाले पशु पक्षी लता वृक्ष पुष्पों में अथाह आत्मीयता, प्रेम एकता सहयोग के दर्शन होंगे। अपने कर्तव्य धर्म से एक क्षण भी मनुष्य असावधान नहीं हो सकता। सद्विचारों के होने पर स्वार्थ को पोषण नहीं मिलता तब धन सम्पत्ति पाकर भी मनुष्य मदमस्त नहीं होगा। बुराइयाँ पास भी न फटकेंगी। विचारों में विमलता, उत्कृष्टता आने पर प्रसाद, प्रसन्नता, सुख, शान्ति सन्तोष सब मिल जाते हैं। विचारों की विमलता से समस्त दुःख द्वन्दों का नाश हो जाता है।

आत्मज्ञान का सम्पादन करना और आत्मनिष्ठा में स्थिर रहना मनुष्यमात्र का सबसे पहला और प्रधान कर्तव्य है।

—स्वामी रामतीर्थ

जो कार्य आपके सामने है उसे शीघ्रता और निष्कपट भाव से करना ही कर्तव्य है—यही आज के अधिकार की पूर्ति है।

—गेटे

मानव की सेवा करना मानव का सर्व प्रथम कर्तव्य है।

—विनोबा

विचारों का तप ही सच्ची तपस्या है। अन्य पशु पक्षी भी भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि परिस्थितियों में रहते हैं, इन्हें सहन करते हैं। दीनता गरीबी अभावग्रस्तता में भी अनेकों लोग भूखे, नंगे, बेघर रहते हैं। कई वेदनाओं को सहन करते हैं। किन्तु इनसे उनके मानसिक अथवा आन्तरिक जीवन में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनका पशुत्व, अमानवीयता, अज्ञान दूर नहीं होता। विचारहीन शारीरिक तप भी मनुष्य को सार्थक सिद्ध नहीं होते। इस तरह तपस्या भी मूलतःविचारों की ही होती है। विचारों की तपस्या से ही ज्ञान का उदय होता है। जीवन के प्रत्येक कार्य, उठने, सोने, खाने, व्यवहार करने आदि बातों में विचारशीलता का अवलम्बन लेना ही सच्ची तपस्या है। प्रबुद्ध विचारों के होने पर अन्य बुराइयाँ भी स्वतः दूर हट जाती हैं। जीवन पवित्र बन जाता है। विचार ही केन्द्रित और एकाग्र होते हुए आगे चलकर ध्यान धारणा,

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

समाधि के स्तरों पर पहुँच कर मनुष्य को जीवन-मुक्त बना देते हैं।

विचारों की साधना कैसे की जाय ? कुत्सित विचारों को हटाकर सद्विचारों की स्थापना कैसे हो ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसकी पूर्ति किसी एकाकी मार्ग से नहीं हो सकती। इसके लिए सर्वाङ्गीण प्रयत्न किए जाने आवश्यक हैं। मुख्यतया स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, सत्संग के साथ ही कर्म के माध्यम से विचारों की साधना होती है। सद्ग्रन्थों के अध्ययन स्वाध्याय आदि से सद्विचारों की प्रेरणा उद्दीपित होती है। फिर चिन्तन और मनन से उन्हें बल मिलता है। कर्म साधन द्वारा विचारों में स्थायित्व पैदा किया जाता है। विचार को मन मस्तिष्क और जीवन व्यवहार में प्रयुक्त करके जीवन का अङ्ग बना लेने पर ही वह सिद्धिदायक होता है। विभिन्न साधनायें, विचारों को केन्द्रीभूत करने के लिए ही हैं।

शब्द ज्ञान की जोड़ तोड़, दिमागी चपलता का नाम विचार नहीं है। आजकल ऐसे विचारशीलों की ही अधिकता है, जो शब्दों की दौड़ और दिमागी कसरत के आधार पर तर्क बुद्धि द्वारा ऊँचे विषयों का प्रतिपादन करते हैं। भाषणों, उपदेशों में भी बड़ी-बड़ी बातें कहते हैं। किन्तु खेद कि जिन विचारों को ये लोग प्रतिपादन करते हैं उन्हीं से अपनी छोटी-छोटी समस्याओं का भी समाधान नहीं कर पाते। वस्तुतः समग्र जीवन की साधना का नाम ही विचार है। जो विचार जीवन से सम्बन्धित नहीं वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो मनुष्य का कोई हित साधन नहीं कर सकता। जो विचार जितनी मात्रा में जीवन में उतर चुका है उतना ही वह अर्थ पूर्ण होता है। इस तरह सीमित क्षेत्र से उठकर विचार जब असीम में निवास करने लगता है तभी जीवन की पूर्णता और सार्थकता सिद्ध होती है। विचार और जीवन का सम्बन्ध ही विचारों के सामर्थ्य की कसौटी है।

❀ ❀ ❀

एक राजा बड़ा सरल स्वभाव का था। उसके प्रशंसक और भक्त बन कर अनेकों लोग राज दरबार में पहुँचते और कुछ न कुछ ठग कर ले जाते। एक से दूसरे को खबर लगी। चर्चा फैली। कुछ न कुछ लाभ उठाने की इच्छा से अगणित लोग राजा के प्रशंसक और शुभचिन्तक बन कर दरबार में पहुँचने लगे। इस बढ़ती भीड़ को देख कर राजा स्वयं हैरान रहने लगा।

एक दिन राजा ने विचारा इतने लोग सच्चे शुभ चिन्तक नहीं हो सकते। इनमें से असली और नकली की परख करनी चाहिए।

राजा ने पुरोहित से परामर्श करके दूसरे दिन बीमार बनने का बहाना बना लिया और घोषणा करादी कि पाँच व्यक्तियों का रक्त मिलने से ही रोग की चिकित्सा हो सकेगी। रोग ऐसा भयङ्कर है कि इसके अतिरिक्त और कोई इलाज नहीं। सो जो राजा के शुभ चिन्तक हों अपना प्राणदान देने के लिए उपस्थित हों।

घोषणा सुनकर राज्य भर में हलचल मच गई। एक से एक बढ़ कर अपने को शुभचिन्तक बताने वालों में से एक भी दरबार में न पहुँचा। राजा और उसके पुरोहित दो ही बैठे हुए असली नकली की परीक्षा के इस खेल पर बैठे विनोद करने लगे।

पुरोहित ने कहा—राजन् ! हमारी ही तरह परमात्मा भी अपने सच्चे झूँठे भक्तों की परीक्षा लेता रहता है। परमात्मा का प्रयोजन पूरा करने वाले सच्चे भक्त संसार में नहीं के बराबर दीखते हैं जब कि उससे कुछ याचना करने वाले स्वार्थियों की भीड़ सदा ही उसके दरबार में लगी रहती है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* परमार्थ प्रयत्नों में मानव जीवन की सार्थकता *

स्वास्थ्य की उन्नति चाहने वालों को जहाँ संयम नियम से रहना पड़ता है वहाँ व्यायाम करने की, भी आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती है। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की परिपुष्टि व्यायाम पर निभर रहती है। अखाड़े में जाये बिना किसी के लिये पहलवान बनना या दङ्गल कुश्ती पछाड़ सकना संभव नहीं होता। श्रम न करने वाले लोग कितने ही संयम नियम से रहें स्वास्थ्य की अभिवृद्धि का लाभ प्राप्त न कर सकेंगे। जो स्थान स्वास्थ्य की उन्नति में व्यायाम का है ठीक वही उपयोगिता आत्म-कल्याण का उद्देश्य पूर्ण करने में सेवा साधना की है। मानव जीवन में सेवा को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। परोपकार से रहित व्यक्ति को संकीर्ण स्वार्थी, अनुदार और निष्ठुर कहा जाता है। ऐसे लोग आत्मिक दृष्टि से सदा पिछड़े हुए ही पड़े रहते हैं, भले ही वे दिन भर पूजा, पाठ या भजन कीर्तन करते रहें।

आध्यात्मिक प्रगति के लिये भजन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। भजन शब्द संस्कृत की भज्—सेवायां—धातु से बना है। इससे स्पष्ट है कि भजन का तात्पर्य सेवा कार्यों में भी है। जप, ध्यान, पाठ, कीर्तन, जैसा ही महत्व सेवा कार्यों का भी है। इसलिए प्रत्येक आत्मिक प्रगति को इच्छा करने वाले के लिये जीवन का सदुपयोग सोचने वाले के लिये जन सेवा के लिये कुछ न कुछ प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। कुछ न कुछ समय श्रम और मनोयोग लगाते ही रहना चाहिए। इस ओर से जो लोग विमुख है उनकी आत्मा का सर्वांगीण विकाश संभव नहीं हो सकता।

विचार की परिपक्वता कर्मों से ही आती है। आत्मिक उन्नति के लिए सद्विचारों के अनुरूप सत्कर्म करने के लिए कुछ व्यवहारिक योजना हम सबके जीवन में सम्मिलित रहनी ही चाहिए। सेवा के अनेक प्रकार होते हैं और यदि विवेक पूर्वक उन्हें किया जाय तो वे सभी उपयोगी होते हैं। अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुरूप हममें से प्रत्येक को कुछ न कुछ कार्य इस प्रकार के नित्य ही करते रहने चाहिए जिससे सेवा धर्म का नियमित अभ्यास होता रहे। नियमित व्यायाम, नियमित भजन, नियमित औषधि सेवन की उपयोगिता जिस प्रकार मानी जाती है उसी प्रकार नियमित सेवा धर्म को कार्यान्वित करने की व्यवस्था भी बनाये रहना आत्मोन्नति की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

लक्ष्मी उसी के लिए वरदान स्वरूप सिद्ध होती है जो उसे दूसरों के लिए वरदान बना देता है।

—फोल्डङ्ग

चरित्र एक वृक्ष के समान है और ख्याति उसकी छाया है। छाया का महत्व उतना ही है जितना हम उसे प्रदान करते हैं, पर वृक्ष वास्तविक वस्तु है।

—अब्राहम लिंकन

सेवा से तत्क्षण शान्ति मिलेगी। सत्कर्म करते समय अन्तरात्मा में जो सन्तोष होता है उसका आनन्द साधारण सांसारिक लाभों एवं सुखों की तुलना में कहीं अधिक उत्कृष्ट श्रेणी का होता है। सद्भावनाओं का प्रमाण सेवा कामों के द्वारा ही मिलता है। उच्च भावनाओं को सुस्थिर प्रतिष्ठापना उन्हीं के अंतःकरण में होती है जो श्रेष्ठ विचारों के अनुरूप उच्च कार्य भी करते हैं। उच्च कार्यों का ही दूसरा नाम पुण्य अथवा सेवा है। दूसरों के लिए परमार्थ बुद्धि रखकर उन्हें सुखी और समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करना मनुष्यता का एक आवश्यक चिन्ह माना गया है।

किन्तु साथ ही एक सावधानी भी रखी जानी

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

चाहिए कि इस सद्भावना का, त्याग और परमार्थ की पुण्य प्रकृया का अनुचित लाभ किसी को न उठाने दिया जाय। पात्र और कुपात्र का ध्यान रखना आवश्यक है। हमारी सेवा सहायता का क्या प्रतिफल होगा, यह काफी विचारपूर्वक सोच लेना चाहिए। अन्यथा सद्भावनाओं का अनुचित लाभ उठाने वाले दुष्ट, दुराचारी, आलसी और अकर्मण्य [illegible] का आडम्बर ओढ़कर ठगी की प्रवचना [illegible] समर्थ होते हुये भी झूठ मूठ [illegible] को दीन दुखी बताते रहते हैं और दूसरों की दया से लाभ उठाने का व्यवसाय अपनाते हैं। कई धर्मात्मा न होते हुए भी धर्मात्मा का आडम्बर बना कर दान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के कुपात्रों की सहायता में खर्च किया गया धन या समय व्यर्थ जाता है। कई बार तो इस मुफ्त के लाभ से इनकी बुराइयों का और भी अधिक पोषण होता है और समाज को भारी क्षति पहुँचती है।

> "बदी करने के मौके दिन में सौ बार मिलते हैं, लेकिन नेकी करने का मौका साल में एक बार मिलता है।"
>
> —वाल्टेयर
>
> "मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा नहीं, शुद्ध चरित्र है और यही उसका सबसे बड़ा रक्षक है।"
>
> —हर्बर्ट स्पेन्सर
>
> "गुणों का विकास एकान्त में अच्छी तरह होता है और चरित्र का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है।
>
> —गेटे

सेवा, धर्म दुधारी तलवार की तरह है जो अनुचित उपयोग होने पर उलटी हानिकारक भी सिद्ध होती है। कुपात्रों की सेवा सहायता से सद्भावनाओं की अभिवृद्धि का उद्देश्य पूरा नहीं होता वरन् दुष्टों की दुष्टता ही परिपुष्ट होती है। सांप को दूध पिलाने से उसका विष ही बढ़ेगा। कुमार्गगामी, आलसी, ढोंगी, मुफ्तखोर लोगों का पोषण यदि दान द्वारा होता है तो वे कोई उपयोगी कार्य क्यों करेंगे? अनुचित लाभ उठाने की अपनी दुष्प्रवृत्ति को क्यों छोड़ेंगे? इसलिए धर्म के नाम पर अनावश्यक एवं अनुपयोगी कार्यों के लिए या व्यक्तियों के लिए अपनी उदारता का दुरुपयोग न होने देना चाहिए। बहुत सोच विचार कर केवल उन कार्यों में अपनी सेवावृत्ति को चरितार्थ करना चाहिए जिससे [illegible] में सद्भावनाओं का विस्तार हो [illegible]

गिरे हुए लोगों को ऊँचा उठाने के लिए कोई सहायता या प्रयत्न करना धर्म है। जो लोग मुसीबत में फँसे हुए हैं, यदि ऐसी परिस्थितियों में पड़ जाते हैं कि अपना भार आप नहीं उठा सकते उनके लिए ऐसी सहायता करनी चाहिए जिससे वे अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हो सकें। दान को व्यवसाय बनाने की प्रवृत्ति बहुत ही हानिकारक है इसे जरा भी नहीं पनपने देना चाहिए। जिन लोगों का समय लोक हित में लगा हुआ है, जिनके पास निज की कोई आजीविका नहीं है ऐसे निरन्तर परमार्थ कार्यों में जीवन लगाये रहने वाले लोक सेवियों को व्यक्तिगत गुजारे के लिए भी सहायता देनी चाहिए। प्राचीन काल में साधु और ब्राह्मण ऐसे ही लोकसेवी होते थे और उन्हें दान देना सार्थक भी था। पर अब तो दान दक्षिणा प्राप्त करना टैक्स वसूल करने की तरह एक अधिकार बनता जाता है। लोक हित की दृष्टि से कुछ भी न करने वाले लोग भी दान लेने में संकोच नहीं करते। इस भिक्षुक प्रवृत्ति को बढ़ने नहीं देना चाहिए। इससे लेने वालों का चरित्र गिरता है और देने वालों के धन का दुरुपयोग होता है। अनुपयुक्त व्यक्तियों का पोषण धर्म और सदाचार की वृद्धि में सहायक नहीं बाधक होता है। बिना विचारे दान से उत्पन्न हुए परिणामों पर देने से रूढ़ि-मात्र का पोषण करने के लिए दिया हुआ दान संसार में अनर्थों को ही बढ़ावा देने वाला प्रतीत होता है।

हमें अपनी सेवा करने की शक्ति तथा सामर्थ्य अनुपयुक्त कार्यों में खर्च नहीं होने देनी चाहिए ताकि

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उसे सत्कार्यों में लगाने के लिए बचाया जासके। जंगली जानवरों से फसल की रखवाली न की जायगी तो बच्चों का पालन करने लायक अन्न भी बेचारे किसान को प्राप्त न होगा। भिक्षाजीवी लोग अनुपयुक्त कार्यों के बहाने जनता को श्रद्धा का अधिकांश भाग खर्च करा लेते हैं, फिर उपयुक्त कार्यों के लिए उनकी सामर्थ ही नहीं रहती। ऐसी दशा में सद्भावना बढ़ाने वाले जिन सत्कार्यों की आज नितान्त आवश्यकता है वे उपेक्षित पड़े रहते हैं। दान, धर्म की इस देश में कमी नहीं, सेवा और उदारता की प्रवृत्ति भी बहुत है पर दुःख यही है कि उसका प्रवाह अनुपयुक्त कार्यों की दिशा में बह जाने से जो आवश्यक है वह कार्यान्वित हो ही नहीं पाता।

हमें धन से ही नहीं तन और मन से भी सेवा कार्यों में लगना चाहिए। आजीविका कमाने तथा अन्य व्यक्तिगक कामों की तरह ही सेवा प्रयत्नों को दैनिक जीवन का एक आवश्यक धर्म कर्तव्य मानकर उसे पूरा करने के लिए शक्तिभर प्रयत्न करना चाहिए। आकस्मित दुर्घटनाग्रस्त एवं पीड़ित,परेशान, भूखे, प्यासे, अन्धे, अपाहिज, कोढ़ी, कलंकी लोग हमारी दया के पात्र है उनकी शरीर रक्षा एवं तात्कालिक आवश्यकता के लिए यथासभव कुछ न कुछ देना ही चाहिए। या यह उत्तरदायित्व सरकार को उठाना चाहिए ताकि इन अपंग लोगों को भी अपना स्वाभिमान खोकर भिक्षा न मांगनी पड़े। पर जब तक ऐसा नहीं होता तब तक संकटग्रस्त लोगों के लिए यथास्थिति कुछ न कुछ सहायता करके दया धर्म को चरितार्थ करते रहना आवश्यक है।

अपने ग्रहण किये आवश्यक उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार पालन करने के लिए जो शक्ति लगाई जाती है वह भी सेवा है। यह समस्त विश्व भगवान की सम्पत्ति है,इसमें से जितने पौधे जिस माली के जिम्मे सींचने सँभालने के लिए मिले हैं वह उन्हें हरा-भरा और फला-फूला बनाने के लिए जो कुछ तप त्याग करता है वह भी सेवा धर्म के पालन का ही एक अंग है। अपने शरीर और मन को आदर्श स्थिति में पहुँचाने के लिए जो स्वाध्याय, साधना, संयम और सेवा का कार्यक्रम बनाया जाता है वह अपनी सेवा होते हुए भी विश्व मानव की ही सेवा है। हम स्वयं भी इस संसार के एक अंश है। अपने को जितना सुधार लिया एक अंश में इस संसार के सुधारने का सेवा का उतना कार्य सम्पन्न होगया मानना चाहिए।

संसार की सबसे बड़ी सेवा-समाज की, मानव जाति की सबसे बड़ी हित साधना यह है कि यहाँ सद्भावनाओं का विस्तार बढ़े। लोगों को अन्तरात्मा में वे प्रवृत्तियाँ पनपें जिनके द्वारा मनुष्यों का जीवन आदर्श कर्म करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता रहे। यों पीड़ितों को गिरे हुओं को, शारीरिक एवं आर्थिक सहायता भी समयानुसार बड़ी आवश्यक होती है पर मानव जाति की समस्त कठिनाइयों का स्थायी हल सत्प्रवृत्तियों के विकाश पर ही निर्भर है। सामयिक कठिनाईयां भी प्रायः मनुष्यों की दुर्बुद्धि के ही परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। दैवी प्रकोप या आकस्मिक दुर्घटना उत्पन्न होने वाली विपत्तियों की स्थिति तो कभी-कभी अपवाद स्वरूप हो जाती है। अधिकांश कष्ट और कठिनाइयां तो मनुष्य के अपने उत्पन्न किये हुए होते हैं। यदि उन भूलों का सुधार न हो तो विपत्तियों की घटाऐं निरन्तर घुमड़ती ही रहेंगी। थोड़ी सेवा सहायता की बूँदें भी उस जलते तवे को ठंडा करने में कुछ भी कारगर न हो सकेंगी।

मानव जीवन की सार्थकता के लिए सेवा धर्म का अपनाया जाना आवश्यक है। हम अपने ही सुख सुविधा की, उन्नति और समृद्धि की बात न सोचते रहें वरन् दूसरों को सुखी बनाने के लिए, पुण्य परमार्थ के लिये भी कुछ न कुछ करते रहें। परमार्थ में सबसे आवश्यक एवं उपयोगी एक ही कार्य हो सकता है और वह है मानवीय गुण कर्म स्वभाव में सद्भावनाओं की अभिवृद्धि का प्रयत्न। इस तथ्य की उपयोगिता यदि हम समझलें और अपने स्वल्प सामर्थ के अंतर्गत जो कुछ हो उसे इसी दशा में प्रयुक्त करने लगें तो संसार की स्थिति ही बदल जाय। तब युग परिवर्तन के इस [illegible] करने के स्वप्न को साकार करते में कुछ [illegible] न लगे।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

हमारा दृष्टिकोण भी तो सुधरे

संसार की प्रत्येक वस्तु में भले-बुरे दोनों प्रकार के तत्व विद्यमान हैं, ठीक उसी तरह जैसे काल के सन्दर्भ में रात और दिन। संसार का प्रत्येक पदार्थ अपने आप में अपूर्णता लिए हुए है। चेतन और जड़ के सहयोग से निर्मित यह विश्व विकारयुक्त है। निर्विकारी तो एक मात्र परमात्म सत्ता, ब्रह्म है, यह निर्विवाद सत्य है। किन्तु मनुष्य का प्रतिगामी दृष्टिकोण केवल वस्तुओं, स्वयं, और संसार के कुत्सापक्ष को ही देखता है।

> 'ईश्वर सत्य है' यह कहने के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' यह कहना अधिक उपयुक्त है।
>
> —म० गांधी
>
> न्याय से बढ़कर कोई रक्षक नहीं, विचार से बढ़कर कोई राजा नहीं, पदार्थ से बढ़कर कोई खड्ग नहीं और सत्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं।—सुकरात
>
> जिस प्रकार सूर्य की किरणें किसी पदार्थ से अपवित्र नहीं की जा सकतीं उसी प्रकार सत्य को भी बाह्य स्पर्श से अपवित्र करना असम्भव है।
>
> —मिल्टन

जिस तरह हरा चश्मा चढ़ा लेने पर चारों ओर हरा-ही-हरा, लाल चढ़ा लेने पर लाल-ही-लाल दिखाई देता है वैसे ही संसार की विभिन्नता मनुष्य के दृष्टिकोण की विभिन्नता का ही परिणाम है। एक पेड़ को बढ़ई इस दृष्टि से देखेगा कि इसमें काम का सामान क्या-क्या बनेगा ? एक दार्शनिक विश्वचेतना और जड़ के सम्मिलित सौन्दर्य को देखकर खिल उठेगा। एक पशु उसे अपने भोजन की वस्तु समझेगा। एक साधारण व्यक्ति उसे कोई महत्व नहीं देगा।

हमारी मानसिक शक्ति ही बाह्य संसार के रूप हमारे सामने आती है। दूसरों को भले रूप में देखना अपने ही भले दृष्टिकोण, पुरोगामी मानसिक शक्ति का परिणाम है। दूसरों की बुराई, दोष-दर्शन छिद्रान्वेषण अपने ही विकृत आन्तरिक जीवन का दर्शन है, प्रतिगामी मानसिक शक्ति का परिणाम है।

मनुष्य का जैसा दृष्टिकोण होता है, वह दूसरों के प्रति जैसा सोचता है उसी के अनुसार उसके विचार, होते हैं, और इनके फल स्वरूप वैसा ही वातावरण, परिस्थितियां प्राप्त कर लेता है। दूसरों के दोष दर्शन, छिद्रान्वेषण करने वाले व्यक्ति जहां भी जाते हैं उन्हें अच्छाई नजर नहीं आती और लोगों से उनकी नहीं बनती। सबको अच्छी निगाह से देखने वाले सरल सात्विक स्वभाव के लोगों को सब जगह अच्छाई ही नजर आती है। बुराई में भी वे ऊँचे आदर्श का दर्शन करते हैं। मरे हुए कुत्ते से लोग घृणा करते हैं किन्तु करुणा मूर्ति ईसामसीह ने उसी में परमात्मा के सौन्दर्य का दर्शन कर अपनी गोद में उठा लिया था।

सर्वत्र अच्छाई के दर्शन करने पर बुरे तत्व भी अनुकूल बन जाते हैं। इस तरह बाह्य वातावरण परिस्थितियों के निर्माण में मनुष्य का स्वयं का अपना दृष्टिकोण और उससे प्रेरित भाव विचार आचरण ही प्रमुख होते हैं। मनुष्य के मित्र और शत्रु, उसके भाव, विचार, दृष्टिकोण आदि ही है। बाह्य जगत तो मनुष्य के आन्तरिक जीवन की छाया मात्र है। बाह्य परिस्थितियां उलझनें समस्यायें एवं कठिनाइयां तो आन्तरिक जीवन के फल स्वरूप ही हैं।

युधिष्ठिर और दुर्योधन एक ही सभा में बैठे हुए थे। दुर्योधन से पूछा गया "आप को यहाँ कितने भले आदमी दिखाई पड़ते हैं।" उसने कहा "मुझे यहाँ कोई भला आदमी नहीं दिखाई पड़ता।" यही

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

प्रश्न जब युधिष्ठिर से पूछा गया तब उन्होंने कहा "यहाँ मुझे सब भले ही भले दिखाई देते हैं । बुरा तो कोई भी नजर नहीं आता ।" मनुष्य अपने ही अच्छे बुरे दृष्टिकोण को बाह्य परिस्थितियों पर आरोपित करके वैसा ही देखता है । जैसा मनुष्य स्वय होगा वैसा ही बाहर देखेगा ।

जो लोग अपने आपको बड़ी कठिनाइयों और शत्रुओं के बीच में घिरे हुए देखते हैं वस्तुत: उनकी विचार और भाषा की शक्ति प्रतिगामी होती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने आपको विरोधियों, हानि पहुँचाने वालों से, काम बिगाड़ने वालों से घिरा हुआ जानकर परेशान होता है । वह यह नहीं समझता कि यह परेशानी मेरे स्वयं के आन्तरिक जीवन की बाह्य छाया मात्र है । जिसकी मानसिक शक्तियाँ पुरोगामी होती हैं उसे चारों ओर अपने मित्र सहायक दिखाई पड़ते हैं। वह कठिनाइयों से नहीं घबराता । दूसरों में अच्छाइयाँ ही नजर आती हैं। फलत: जीवन की भीषण, विपरीत परिस्थितियों में भी वह सफलता प्राप्त कर लेता है । सब उसके सहायक बन जाते हैं ।

सर्वत्र सत्य का दर्शन करने वाले बुद्ध के समक्ष आकर डाकू अंगुलिमाल भी बौद्ध भिक्षु बन गया। ईसामसीह आज दुनियां में असंख्यों लोगों के हृदय पर शासन कर रहे हैं । महात्मा गांधी की आवाज पर लोगों ने अपने काम धन्धे छोड़े, स्कूल छोड़ दिए राष्ट्र की सेवा के लिए कठिनाइयाँ झेलीं । यह [illegible] शक्तियों एवं सर्वत्र भलाई के [illegible] स्वभाव ही था ।

वस्तुओं के काले पहलू का दर्शन करने, दूसरों [illegible] छिद्र आदि को देखने, प्रतिगामी दृष्टिकोण के [illegible] रहने पर थोड़े समय बाद ऐसी स्थिति [illegible] के बाह्य कारण न पाकर मनुष्य अपने [illegible] दृष्टिकोण का केन्द्र [illegible] होता है । यह बड़ी जटिल स्थिति [illegible] हो जाता है । इसके परिणाम स्वरूप गम्भीर शारीरिक या मानसिक रोग हो जाते हैं । इस तरह के लोग "मेलेन्कोलिया" जैसे रोगों से पीड़ित हो जाते हैं । दूसरों से लड़ने-झगड़ने की आदत पक्की हो जाने पर मनुष्य जब अपने सामने लड़ने का कोई आधार नहीं पाता तो वह अपने आप से लड़ने लगता है । जो व्यक्ति अपने शक्ति के दिनों में दूसरों को मारते पीटते हैं बालकों पर लात घूँसे बेंतें उड़ाते हैं, वे वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाने पर अपना सिर फोड़ते हैं, शरीर को ताड़ना देते हैं और यहाँ तक कि कई व्यक्ति आत्म-हत्या तक कर लेते हैं । आत्म-हत्या अपने प्रति घृणा, हीन भाव, दोष-दर्शन की चरमावस्था है ।

> सद्विचार पर बुद्धि रखने का ही नाम श्रद्धा है । यही श्रद्धा मनुष्य को बल देती है, सब प्रकार की प्रेरणा देती है और उसके जीवन को सार्थक बनाती है ।
>
> —विनोबा
>
> श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत है, प्रेम का एकान्त । प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार ।
>
> —रामचन्द्र शुक्ल
>
> श्रद्धा का अर्थ है आत्मविश्वास और आत्म विश्वास का अर्थ है ईश्वर पर विश्वास ।
>
> —म० गांधी

इसके विपरीत सद्भावना शील उच्च [illegible] वाला मनुष्य हर परिस्थिति में शान्ति [illegible] प्रसन्नता अनुभव करता है । उसके विचारों [illegible] उसका ही नहीं वरन् अन्य लोगों का भी हित साधन होता है । भला मनुष्य चारों ओर भलाई की सुगन्ध बिखेरता है और बुरा मनुष्य बुराई का गन्दा कीचड़ ही उछालता रहता है ।

भलाई, उत्कृष्टता, स्वच्छता [illegible] संसार के तत्व चिन्तकों, दार्शनिकों, हमारे ऋषियों

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ने यह सब अनुभव किया और कहा, "मङ्गलमय भगवान की मङ्गलमय कृति यह सृष्टि है" फिर भला दूषित अपवित्र तत्व कहां से आये है ?

हम अपना भीतरी दृष्टिकोण को बदलें तो बाहर जो कुछ भी दिखाई पड़ता है वह सब कुछ बदला-बदला दिखाई देगा। आँखों पर जिस रङ्ग का चश्मा पहना होता है बाहर को वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई पड़ती हैं। अनेक लोगों को इस संसार में केवल पाप और दुर्भाव ही दिखाई पड़ता है। सर्वत्र उन्हें गंदगी ही दीख पड़ती है। इसका प्रधान कारण अपनी आन्तरिक मलीनता ही है। इस संसार में अच्छाइयों की कमी नहीं, श्रेष्ठ और सज्जन व्यक्ति भी सर्वत्र भरे पड़े हैं, फिर हर व्यक्ति में कुछ न कुछ अच्छाई [illegible] छिद्रान्वेषण छोड़ कर यदि हम गुण ग्रहण करने का अपना स्वभाव बनालें तो घृणा और द्वेष के स्थान पर हमें प्रसन्नता प्राप्त करने लायक भी बहुत कुछ इस संसार में मिल जायगा। बुराइयों के सुधारने के लिए भी हम घृणा का नहीं, सुधार और सेवा का दृष्टिकोण अपनायें तो वह कटुता और दुर्भावना उत्पन्न न होगी जो संघर्ष और विरोध के समय आमतौर से हुआ करती है।

दूसरों को सुधारने से पहले हमें अपने सुधार की बात सोचनी चाहिए। दूसरों से सज्जनता की आशा करने से पूर्व हमें अपने आपको सज्जन बनाना चाहिए। दूसरों की दुर्बलताओं के प्रति एक दम आग-बबूला हो उठने से पहले हमें यह भी देखना उचित है कि अपने भीतर कितने दोष दुर्गुण भरे पड़े हैं। बुराइयों को दूर करना एक प्रशंसनीय प्रवृत्ति है। अच्छे काम का प्रयोग अपने से ही आरम्भ करना चाहिए। हम सुधरें [illegible] सुधरे तो दूसरों का सुधार होना [illegible] रह जायगा।

// राजकुमार सिद्धार्थ और मंत्री पुत्र देवदत्त दोनों साथ-साथ बाग मे घूमने जा रहे थे। सहसा सिद्धार्थ ने देखा दो सुन्दर राजहंस आकाश में उड़ते जा रहे हैं। उन्हें देखकर वह प्रसन्न हो उठा, "देवदत्त ! देखो ये कितने सुन्दर पक्षी जारहे हैं।" देवदत्तने ऊपर देखा और अपना धनुषबाण उठाया एक पक्षी को मार गिराया।

सिद्धार्थ की प्रसन्नता शोक और व्याकुलता में परिणित हो उठी। सिद्धार्थ दोड़े और रक्त से सने राजहंस को गोदी में उठा लिया और सीने से लगाकर रोने लगे।

"इस पक्षी पर मेरा अधिकार है सिद्धार्थ। देखते नहीं हो। इसे मैंने अपने बाण से मारा है।" देवदत्त ने कहा।

सिद्धार्थ बिना कुछ कहे सुने पक्षी को लेकर चले गये अपने भवन में। और वहाँ उसकी सेवा सुश्रूषा करने लगे।

देवदत्त ने उस समय राजकुमार समझ कर कुछ झगड़ा नहीं किया किन्तु पक्षी के बारे में उसकी लालसा मिटी नहीं। उसने फिर सिद्धार्थ से पक्षी माँगा किन्तु जवाब इन्कारों में ही मिला। सिद्धार्थ बड़े प्यार से उसकी सेवा करने लगे।

देवदत्त ने न्याय प्राप्ति के लिए महाराज के पास जाकर शिकायत की। महाराज ने दोनों को राज दरवार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। एक ओर देवदत्त खड़े थे दूसरी ओर सिद्धार्थ अपनी गोद में पक्षी को लिए हुए। देवदत्त ने अपना तर्क प्रस्तुत किया—"महाराज मैंने पक्षी को बाण मारा, इसलिए इस पर मेरा अधिकार है।"

"किन्तु मैंने इसे बचाया है। मारने वाला नहीं बचाने वाला बड़ा होता है इसलिए उसका ही अधिकार होना चाहिए।" सिद्धार्थ ने बिना पूछे कहा। महाराज पक्षी को दोनों के बीच में छुड़वा दिया और वह स्वयं बुद्ध के पास चला गया।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* अशोक का सर्वमेध *

एक दिन सम्राट अशोक ने श्रमणसंघ से पूछा—तथागत के धर्म-संघ में सबसे अधिक दान किसने किया ?

भिक्षुकों ने उत्तर दिया—"अनाथ पिंडक ने महाराज !"

कितना धन ?

सौ करोड़ मुद्राएँ !

सम्राट को बड़ा आश्चर्य हुआ और फिर वे सोचने लगे कि एक साधारण ग्रहस्थ ने जब इतना किया तो मुझे भी इतना तो करना ही चाहिए। मैं भी सौ करोड़ मुद्राएँ दान करूँगा।

तभी से सम्राट अपनी संकल्प पूर्ति के कार्य में लग गये। विद्यालयों, मठों, क्षेत्रों और लोक कल्याण के अन्य कार्यों के लिए उन्होंने मुक्त हस्त से दान करना आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में संख्या ९६ करोड़ तक पहुंच गई।

इसी बीच सम्राट रुग्ण हो गये। रोग शय्या पर पड़े हुए वे सोचने लगे कहीं संकल्पपूर्ण होने से पहले ही उनकी मृत्यु न हो जाय। यह चिन्ता उन्हें अत्यन्त क्षुब्ध बनाने लगी।

सम्राट कुणाल के पुत्र सम्पदी को युवराज बना चुके थे। रोग शय्या पर पड़े हुये सम्राट अपना शेष संकल्प पूरा करने के लिए जल्दी-जल्दी जब राज्य कोष से धन भिजवाने की व्यवस्था करने लगे, तो युवराज ने उसे रोक दिया। अशोक विवश रह गये। युवराज सत्ता अपने हाथ में ले चुके थे।

कोई और उपाय न देखकर सम्राट ने अपने उपयोग की वस्तुएँ दान करनी आरम्भ कर दी। उन्होंने अपने स्वर्ण, रौप्य पात्र संघाराम भेज दिये और स्वयं मिट्टी के पात्रों से काम चलाने लगे। युवराज ने उन्हें कोई मूल्यवान वस्तु न देने की आज्ञा जारी करदी।

संकल्प अभी भी अधूरा था। मृत्यु निकट आ रही थी। अब क्या दान किया जाय ? अशोक को कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। अब उनके पास निजी सम्पत्ति के नाम पर एक सूखे हुए आँवले का आधा मात्र भाग शेष बचा था। उसे ही उन्होंने संघाराम भेज दिया।

जो राज पुरुष उस आँवले के टुकड़े को लेकर संघाराम गया था उसके द्वारा कहलवाया गया कि—सम्राट अशोक के पास इस आँवले के टुकड़े के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं बचा है। यही उनका शेष दान समझा जाय और उसके द्वारा कुछ सेवा हो सकती हो तो स्वीकार किया जाय।

संघ स्थविर ने आँवले के टुकड़े को लेकर ग्रहण किया। भिक्षुओं के लिए बनने वाली खिचड़ी में उस आँवले का चूर्ण बना कर मिला दिया गया और सबने उस महाप्रसाद को श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया।

सम्राट का आयुष्य पूर्ण हुआ। मृत्यु की घड़ी समीप आ पहुंची। संघ स्थविर आचार्य अभिष्यन्द समीप खड़े थे। अशोक ने आँखों में अश्रु भर कर आचार्य का अभिवादन किया और बोले मेरा ४ करोड़ मुद्राओं का संकल्प अधूरा रह गया।

अभिष्यन्द ने राजा के मस्तक पर अपना हाथ रखते हुए कहा—राजन्, सर्वस्व दान के रूप में अपने जो आधे आँवले का दान किया था वह सहस्रों करोड़ मुद्राओं से अधिक पुण्य दायक हुआ है। आप शान्तिपर्वक स्वर्ग प्रयाण कीजिए, आपका संकल्प पूर्ण हो चुका।

अशोक ने सन्तोष की साँसली और सदा के लिये अपने नेत्र बन्द कर लिये।

—❀—

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सरस और स्निग्ध जीवन

कई व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं, अरमानों के सुनहले स्वप्नों की रङ्गीन दुनियाँ को साकार नहीं देख पाते। जो कुछ वे सोचते हैं वह पूरा नहीं होता, जो कुछ चाहा वह न मिला ऐसे लोग अपनी इन शिकायतों का भार ढोते रहते हैं और जीवन की सभी सम्भावनाओं से निराश हो बैठते हैं। किन्तु इससे किन्हीं सद्परिणामों की आशा नहीं की जा सकती। ऐसे खिन्न लोगों को अपनी मान्यताओं पर नये सिरे से विचार करना होगा। और उन्हें देखना होगा कि हमारी आकांक्षाओं, इच्छाओं में से कितनी हमारे लिए महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं। यदि इनका आधार वास्तविक होगा तो मनुष्य उसके लिए अथक प्रयत्न करता रहेगा और एक दिन उसकी पूर्ति अवश्य होगी।

> अमृत जीवन की अगर अभिलाषा है तो आत्मा की व्यापकता का अनुभव करो, सबकी सेवा करो, सबसे एक रूप हो जाओ।
>
> —विनोबा
>
> अच्छा जीवन वही है जिसमें ज्ञान और भावनाओं—बुद्धि और सुख दोनों का सम्मिश्रण हो।
>
> —सुकरात
>
> मनुष्य का सच्चा जीवन तब प्रारम्भ होता है जब वह यह अनुभव करता है कि केवल भौतिक जीवन अस्थिर है और वह सुख नहीं दे सकता।
>
> —टाल्सटाय

कभी-कभी ठीक और वास्तविक उद्देश्य होते हुये भी असफलता और निराशा का सामना करना पड़ता है। इसके लिये परिस्थितियों एवं शक्ति सामर्थ्य का भी बहुत कुछ हाथ रहता है। परिस्थितियों को अनुकूल पाकर साधारण व्यक्तियों ने भी बड़ी-बड़ी सफलतायें प्राप्त की हैं। और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बड़े-बड़े विद्वान योग्य व्यक्ति भी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि अपनी उचित आकांक्षाओं की पूर्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए।

अपनी आकांक्षाओं उद्देश्यों, दृष्टिकोण की पूर्ति का माप जोख अब तक के जीवन से ही नहीं लगाना चाहिए। हो सकता है आगे के शेष जीवन में सफलता मिले। अक्सर महान कार्यों की पूर्ति महापुरुषों के जीवन के अन्तिम काल में ही हुई है। इतना ही नहीं उनके मर जाने के बाद उनकी आकांक्षायें सफल हुई हैं फिर अपने थोड़े से जीवन में असफलताओं से निराश होकर बैठे जाना मनुष्य की स्वयं की ही भूल है।

प्रत्येक चीज के दो पहलू होते हैं और दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण होते हैं। रात और दिन, उजाला-अँधेरा परस्पर विरोधी होते हुए अपने स्थान पर कुछ-न-कुछ महत्व रखते ही है। इसी तरह सफलता-असफलता भी हैं। इनमें केवल सफलता से ही लगाव रखना उसी में जीवन का सुख समझना ठीक नहीं। जीवन में कभी-कभी सब कुछ होते हुये भी असफलता मिल जाती है। किन्तु सफलता की तरह ही उसे भी गले लगाना चाहिए। कभी-कभी तो असफलता में ही बहुत बड़े लाभ छिपे रहते हैं। अपने किन्हीं उद्देश्यों, आकाक्षांओं में असफल हो जाने पर कई लोगों के जीवन में बड़े बड़े परिवर्तन हुए और जिसके कारण उन्होने महानता प्राप्त की। अतः असफलता से दुःखी न होकर पुनः प्रयत्न करने चाहिए अथवा आवश्यक हो तो अपनी आकांक्षाओं में भी अपनी परिस्थिति एवं क्षमता के अनुरूप परिवर्तन करके उसकी पति के लिये लगे रहना चाहिये।

कई लोग जिन्हें ने लिखने में असफलता मिली किन्तु वे आध्यात्मिक, चिन्तन के क्षेत्र में सफल हुए और महान पुरुष बन गये। कई व्यक्ति अपने घरेलू जीवन में असफल रहे किन्तु सार्वजनिक

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सेवा के क्षेत्र में वे काफी आगे बढ़ गये। इस तरह एक असफलता दूसरी बड़ी सफलता का कारण बनकर भी आ जाती है। यदि उस समय धैर्य और साहस के साथ काम लिया जाय, अथवा सूक्ष्म निरीक्षण कर अपनी असफलताओं पर विचार किया जाय, अपने दृष्टिकोण से आकांक्षाओं को समझकर उनमें आवश्यक परिवर्तन कर लिया जाय तो जीवन की दिशा भी बदल सकती है और सफलता का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है।

भविष्य की चिन्ता और अतीत की दुःखद स्मृतियों की कल्पना भी मनुष्य के लिए एक समस्या का विषय है। ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो अपने भविष्य की चिन्ता में ही उलझे रहते हैं। अमुक कार्य कैसे पूरा होगा? उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कैसे होगा? भविष्य के बारे में सोच विचार करना कोई असंगत बात नहीं है। किन्तु यदि इसी में उलझे रहकर वर्तमान की उपेक्षा की गई तो परिणाम में दुःखद परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। भविष्य के सुन्दर महल का निर्माण वर्तमान की नींव पर ही होता है। अतः वर्तमान का मूल्य समझकर उसका सदुपयोग करना आवश्यक है।

भविष्य हमेशा अनिश्चित है। वर्तमान निश्चित है। अतः अपना निश्चित निधि को खोकर अनिश्चित के लिये सोच बिचारों में उलझे रहना भविष्य के प्रति वर्तमान का अनादर करना है। भविष्य के लिए वर्तमान का अनादर करना दुःखों का ही कारण बनता है। भविष्य की चिन्ता करना बुरा नहीं है। उसकी एक निश्चित योजना रूपरेखा बनाकर ही वर्तमान की पगडण्डी पर चला जा सकता है। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण है वर्तमान का सदुपयोग करना। वर्तमान का सदुपयोग होते रहने पर दुःखों का अन्त हमेशा के लिए समाप्त होगा, साथ ही सुख शांति मिलेगी और भविष्य भी सब तरह से सुखद सम्पन्न, विकसित और कल्याणकारी बनकर आयगा। जीवन में वर्तमान को महत्व दीजिए और उसका सच्चा सदुपयोग कीजिए।

अतीत की याद भी मनुष्य को उलझाए रहती है। बीते समय की दुःखपूर्ण घटनाओं की याद जीवन को विषाद, अवसादयुक्त बना देती है। दुःख की स्मृतियाँ वर्तमान के सुखी सम्पन्न जीवन को भी नीरस, दुःखद, एवं भार स्वरूप बनाये रहती हैं। इसलिए उन्हें भुला देना ही उत्तम है। उन दुःखद स्मृतियों को भुलाने की आदत डालनी चाहिए जिससे वर्तमान नीरस, भारस्वरूप एवं दुःखद न बने।

अतीत की दुःखद स्मृतियाँ जब प्रबल हो रही हों तो उन्हें लाने के लिए अध्ययन करने लगना काफी उपयोगी सिद्ध होता है। सद्ग्रन्थों का अध्ययन करते रहने से इन्हें सहज ही भुलाया जा सकता है। इसी तरह किसी दिलचस्प काम में लग जाना भी, कला, साहित्य, संगीत, आदि भी इसके लिए रामबाण औषधि है। अत्यधिक चिन्तन से दूर रहकर अपने आपको कार्यव्यस्त रखना भी अतीत की व्यथा, को भुलाने के लिए एक सहज उपाय है। रचनात्मक कार्यों में लगे रहना अतीत पर सोच विचार करने को समय ही नहीं छोड़ता।

एक बँधे बँधाये ढर्रे पर काम करते रहने, एकरसता से बने रहने पर भी जीवन भार स्वरूप लगने लगता है। जीवन में ऊब पैदा हो जाता है। अतः इस तरह की जीवन पद्धति को बदलना भी आवश्यक है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि एक मार्ग छोड़कर फिर दूसरी ओर फिर तीसरी ओर चलें। अथवा एक काम को अधूरा छोड़कर दूसरे में फिर तीसरे में लग जायें। आवश्यकता इस बात की है कि अपने निश्चित उद्देश्य, दृष्टिकोण की ओर बढ़ते हुए, प्रत्येक काम करते हुए उसमें नित्य निरन्तर नवीनता लाने का प्रयत्न किया जाय। उसे अधिक अच्छे ढंग से करने का प्रयत्न किया जाय। प्रतिदिन उसमें नवीनता, विशेषता का सम्पुट दिया जाय। जीवन के ललित-पक्षों को भी व्यक्त होने के लिए यथेष्ट अवसर दिया जाय। इससे जीवन में नवीनता, सरसता, सुख शान्ति एवं प्रसन्नता बनी रहेगी।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* शक्ति का स्रोत संघर्ष ही तो है *

—:०:*:०:—

प्रगति के लिए शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति ही वह तत्व है जिसके आधार पर सुख सुविधा और साधन सामिग्री उत्पन्न होती है। अशक्त वस्तु या व्यक्ति को कूड़ा समझा जाता है और प्रकृति की व्यवस्था उसे जल्दी ही नष्ट करने की तैयारी करती है। शरीर जब तक सशक्त है तब तक उसे प्रतिष्ठा, प्रशंसा, प्यार और सहयोग प्राप्त होता है। बीमारी या कमजोरी की स्थिति में आन्तरिक कष्ट और बाहरी दुर्व्यवहार भुगतना पड़ता है। यह शरीर यदि और भी अधिक अशक्त होकर मृतक बन जाय तो परिजन उसे जल्दी ही जलाने, गाढ़ने, बहाने आदि की तैयारी करते हैं। यदि वे देर करें तो उस मृत शरीर में स्वयं ही सड़न पैदा हो जाती है और कीड़े उत्पन्न होकर उसे समाप्त कर देते हैं। जंगलों में पड़े हुए मृत शरीर गिद्ध, कौए, सियार कुत्तों के [illegible] जाते हैं।

जहाँ धर्म नहीं वहाँ विद्या, लक्ष्मी, स्वास्थ्य आदि का भी अभाव होता है। धर्म रहित स्थिति में बिल्कुल शुष्कता होती है, शून्यता जान पड़ती है।

——म० गांधी

सच्चा धर्म तो पापों की जड़ काटकर मुक्ति का मार्ग प्रदर्शन करता है, पर मिथ्याधर्म में मुक्ति टकों के बल पर बिकती है।

—रस्किन

भारतवर्ष का धर्म उसकी पुत्रियों के प्रताप से ही स्थिर है। भारतीय देवियों ने यदि अपना धर्म छोड़ दिया होता तो देश कब का नष्ट हो चुका होता।

—महर्षि दयानन्द

जिस सबल शरीर के द्वारा सिंह का शिकार किया जाता था, खेल प्रतियोगिता में पुरुस्कार मिलता था, रूप और यौवन में भारी आकर्षण रहता था, उपार्जन के सभी द्वार खुले रहते थे वही शरीर अशक्त होने पर अपनी इन सब विशेषताओं को खो बैठता है और देखने वालों की दृष्टि में कुरूप, दीन, दयनीय बन जाता है, लोग उससे बचने और पीछा छुड़ाने की बात सोचने लगते हैं। जो वस्तुएँ पुरानी हो जाती हैं, सड़-गल जाती हैं, निकम्मी और शक्तिहीन हो जाती हैं वे कूड़े-कवाड़ में फेंकी जाती हैं और उन्हें नष्ट करके उनसे कुछ नया बनाने का विचार किया जाता है। वृद्धावस्था होने पर मौत भी इसी उद्देश्य से आती है।

जीवन और उपयोगिता बनाये रहने के लिए हमें शक्ति का संचय करना और बढ़ाना आवश्यक है। जो जितना शक्तिशाली है वह उतना ही सामर्थ्यवान रहेगा। जो कुछ हम चाहते हैं उसे आकांक्षा की पूर्ति का समस्या सामने आते ही सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या उसके लिए आवश्यक शक्ति हमारे पास है? यदि अशक्तता छाई हुई हो तो उन्नति की बात तो दूर सुरक्षा भी संदिग्ध हो जाती है।

अशक्त व्यक्तियों से उनकी कमाई या उचित अधिकार की वस्तु को भी चोर लुच्चे हथिया लेते हैं। अपने अस्तित्व को बनाये रहना भी दुर्बलों के लिए कठिन होता है। लोमड़ी, खरगोश, मुर्गी, कबूतर, मछली जैसे स्वल्प सामर्थ वाले जीव दूसरे हिंसकों द्वारा आये दिन संत्रस्त किये जाते हैं। प्रचंड अग्नि के लिए तेज चलती हुई हवा सहायक होती है, उसकी प्रचंडता को बढ़ाती है। वही हवा बेचारे कमजोर दीपक की लौ बुझा देने की हरकत करने में नहीं चूकती। इस संसार का ऐसा ही विचित्र विधान बना हुआ है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

परमात्मा भी उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। प्राचीन इतिहास पुराणों मे अगणित सिद्ध योगियों और ईश्वर भक्तों के आत्म बल की कथाएँ हम पढ़ते हैं तो परमात्मा की महानता और करुणा पर बड़ी प्रसन्नता होती है। पर जब यह सोचते हैं कि किसी-किसी को ही विशेष कृपा पात्र परमात्मा ने क्यों बनाया और उन्हें ही विशेष अनुग्रह एवं वरदान प्रदान करने का पक्षपात क्यों किया ? तो उसका उत्तर भी सहज ही मिल जाता है। तपस्वियों ने अपने तप, पुरुषार्थ से आत्म-बल एकत्रित करके परमात्मा को वह कृपा प्रदान करने के लिए विवश ही किया है। उसमें ईश्वर की करुणा का जितनी प्रशसा है उतनी ही भक्त के पुरुषार्थ की भी है। पुरुषार्थ को आधार,और वरदान को उसका प्रतिफल माना गया है। न्याय और निष्पक्षता का तकाजा भी यही है। ईश्वर अपने आपको अन्यायी और पक्षपाती कहलाने वाले काम नहीं कर सकता, उसकी प्रत्येक क्रिया सिद्धान्त और मर्यादाओं के अनुरूप ही होती है।

प्रकृति इस संसार में सब कुछ स्वस्थ, सुन्दर, समर्थ और समुन्नत देखना चाहता है। उसमें जहाँ भी कमी आती है वहीं वह असुन्दर चीज को मिटा कर नई सुन्दर चीज फिर बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर देती है। कुम्हार कई तरह के बर्तन और खिलौने बनाता रहता है। उसमें से कुछ कुरूप और दोषयुक्त भी बन जाते हैं। कुम्हार उन्हें तोड़ डालता है और उसी मिट्टी से दूसरी अच्छी चीज बनाता है। प्रकृति भी यही करती रहती है। अशक्त बताकर जिन्होंने अपना जीवन कुरूप बना डाला है, उनके नष्ट होने में ही उसे अच्छाई दीखती है। "दैव को दुर्बल का घातक" बता कर शास्त्रकारों ने एक कटु सत्य का ही उद्घाटन किया है।

ईश्वरीय सहायता हर किसी को मिलती है, मिल सकती है पर उसका नियम वही है जो विद्यालयों में छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रों पर लागू होता है। जो अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं, अपने प्रबल पुरुषार्थ का परिचय देते हैं, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए छात्र-वृत्तियाँ मिलती हैं। सरकार भी और दानी व्यक्ति भी इसी आधार पर अपनी सहायता का हाथ बढ़ाते हैं। जो छात्र अपनी योग्यता का परिचय नहीं दे पाते, फेल होते या फिसड्डी रहते हैं, उन्हें छात्र-वृत्ति देने में क्या अधिकारी, क्या दानी, सभी अपनी सहायता का दुरुपयोग होता हुआ सोचते हैं और उस प्रकार के छात्रों को निराश रहना पड़ता है। इस कटु सत्य को हम अपने चारों ओर फैला हुआ देख सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक पदार्थ इस बात का साक्षी है कि शक्ति जब तक मौजूद है तब तक उसके लिए यह दुनियां स्वर्ग के समान सुखदायक है पर जैसे ही उसमें न्यूनता आने लगती है वैसे ही स्थिति बदलने लगती है, सुख के उपकरण ही दुखदायक बन जाते हैं। यहाँ तक कि जिस शरीर को इतने प्यार, मनोयोग से पाला था वह भी पीड़ा और परेशानी उत्पन्न करने लगता है।

> "जो धन दया और ममता से रहित हो उसकी तुम कभी इच्छा न करो और उसको कभी अपने हाथ से न छुओ।

शक्ति की उत्पत्ति अवरोध से होती है। नदी में जल का प्रबल प्रवाह बहता रहता है, वह अपने क्रम से चलता रहता है और समुद्र में अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है पर उस प्रवाह को कहीं रोक जाय तो अवरुद्ध स्थान पर शक्ति का [illegible] लगता है। गंगोत्री और उत्तर काशी के बीच गंगा की मध्य-धारा में पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। इन चट्टानों से जहाँ जल प्रवाह टकराता है वहाँ पानी भयानक रीति से उफनता है, भारी शब्द करता है और तीस-तीस फुट ऊँचे छींटे उछालता है, उस दृश्य को देखने मात्र से डर लगने लगता है। यदि वे चट्टानें हटा दी जाँय तो प्रवाह साधारण

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

ति से बहने लगेगा और उस भयानक शक्ति-
का दृश्य सहज ही समाप्त हो जायगा।

तुष की डोरी जब तनती है तब उसमें तीर
की शक्ति आती है। यदि वह डोरी
ढीली रहे तो उससे तीर फेंकने का काम जरा
भी न हो सकेगा। मन के अस्त-व्यस्त प्रवाह को
बलपूर्वक रोक कर एक दिशा में लगाने वाले
व्यक्ति उसकी महान शक्ति से महत्वपूर्ण प्रयोजन
पूरा करते हैं। वैज्ञानिकों से लेकर योगियों तक ने
अब तक अगणित सिद्धियाँ प्राप्त की हैं उन सब का
मूल मन को रोक कर एक दिशा में लगाये रहने
की क्षमता में ही सन्निहित है। काम-वासना का
दमन करके ब्रह्मचर्य से रहने वाले लोग शरीर मन
और आत्मा की तेजस्विता प्राप्त करते हैं। लोभ
और मोह को ठुकरा कर आदर्शवाद का मार्ग
अपनाने वाले महापुरुषों का ही नाम अमर होता
है। लालसा और वासना के सामान्य क्रम में बढ़ते
रहने वाले लोग किसी प्रकार जिन्दगी काट तो
लेते हैं, पर उन्हें उसका वास्तविक लाभ नहीं
मिल पाता।

> कृतज्ञता एक कर्तव्य है जिसे पूरा करना चाहिए,
> किन्तु जिसे माँगने का किसी को अधिकार नहीं।
>
> —रूसो

प्राचीन काल में बालकों को गुरुकुलों में रहकर
कष्ट साध्य जीवन का अभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त
करने की व्यवस्था रहती थी। कठोरता से टकरा
कर विकसित होने वाले बालकों का शौर्य और
साहस बिखरता था। अमीरी के वातावरण में पलने
वाले लड़के तो विलासी और लुंज-पुंज ही बन
सकते हैं। जीवन संघर्ष में लड़ने की जब बारी आती
है तो उनकी सुकोमलता उन्हें असफलता, निराशा
और पराजय ही प्रस्तुत करती है।

पहाड़ों पर उगने वाले देवदारु के विशाल वृक्ष
न करते हुए हिम-प्रदेशों में
रहते हैं, पर बगीचों में पलने वाली सुकुमार फुल-
वारी जरा सी सर्दी गर्मी में
बैठती है। पहलवानों
सदा अखाड़ों की मिट्टी से
रहता है। पत्थर पर रगड़ खाये बिना हथियारों को
धार तेज कहाँ होती है?

शक्ति संचय में जीवन की प्रखरता इसीलिए
है कि उसमें अवरोध की प्रतिक्रिया स्वरूप उछलती
हुई तेजस्विता भरी रहती है। बिजली की उत्पत्ति
रगड़ से ही तो होती है। संघर्ष का ही नाम जीवन
है, जहाँ सक्रियता समाप्त हुई
हो जाता है। आलसी और
गणना अर्ध मृतकों में होती है। पूर्ण मृतक तो उन्हें
इसलिए नहीं कह सकते कि खाते, पीते, बोलते,
चालते, चलते-फिरते आदमी को श्मशान या कब्रि-
स्तान नहीं लेजाया जा सकता। पर साथ ही उन्हें
जीवित कहना भी कठिन है। क्योंकि जीवन का अर्थ
है—संघर्ष—पुरुषार्थ। जिसने पुरुषार्थ करने से
इनकार कर दिया वह जीवन के प्रति आस्था ही
खो बैठा। ऐसे लोगों को भी यदि जीवित कहा जाय
तो यह जीवनतत्व का उपहास ही माना जायगा।

जीवन को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता
हमें भली प्रकार समझ लेनी चाहिए और यह भी
जान लेना चाहिए कि शक्ति का स्रोत संघर्ष ही है।
ढर्रे पर लुढ़कने वाला, चैन की जिन्दगी काटने का
कार्यक्रम मौत के दिन पूरे करते रहने में तो सहायक
हो सकता है पर इस मार्ग में हर दृष्टि से मनुष्य को
खाली हाथ ही रहना पड़ता है। श्रम किये बिना
सम्पत्ति कहाँ? पढ़े बिना विद्या कैसी? संयम बिना
स्वास्थ्य कैसा? तप किये बिना वरदान कैसे?
तत्परता से ही तो प्रसुप्त शक्तियों का जागरण
होता है। और जागृत शक्तियाँ ही तो विभूतियों
के रूप में—ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में सामने
आती हैं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

—:: धर्म पुराणों की सत्कथाएँ ::—

—:o:●:•:—

अधिकारी सत्पात्र—

राजा उदावर्त बहुमूल्य रत्न-राशि लेकर महर्षि कणाद के आश्रम मे पहुंचे, और वह भट करते हुए ब्रह्मविद्या का उपदेश करने की प्रार्थना की।

महर्षि ने धन को अनावश्यक कह कर लौटा दिया और एक वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने के उपरान्त पुनः आने पर उपदेश की सम्भावना व्यक्त की।

राजा निराश लौट रहे थे। उन्हें बुरा भी लगा और क्षोभ भी आया।

मन्त्री धृतिकीर्ति ने उनकी खिन्नता दूर करते हुए कहा—राजन्! भूखे को ही अन्न पचता है। [illegible] ज्ञान का लाभ मिलता है। ऋषि ने [illegible] रहने की शर्त लगा कर आपको [illegible] है। मांग और उनकी कसौटी पर खरे उतरे तो आपको ब्रह्म-विद्या का लाभ सहज प्राप्त होगा, अनधिकारी मे ज्ञान को पचाने की सामर्थ्य नही होती। मनोरंजन के लिए कुछ कहने में समय की बर्बादी समझकर ऋषि ने आपको लौटाया है। उसमे बुरा न मानें।

ऋषि का अभिप्राय उदावर्त की समझ में आ गया, वे एक वर्ष ब्रह्मचर्य से रहे और आध्यात्मिक ज्ञान के अधिकारी बन कर जब पुनः आश्रम में समित्पाणि होकर पहुँचे तो कणाद ने उन्हें छाती से लगा लिया और कहा, निरहङ्कारी, धैर्यवान् और श्रद्धावान् जिज्ञासु ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी होते हैं। अब मैं सब कुछ कहूँगा और आप ब्रह्म-विद्या का सच्चा लाभ उठावेंगे।

उदावर्त ने ब्रह्म-ज्ञान पाया और अपने को धन्य बनाया।

भूलोक में सेवा धर्म—

महा पराक्रमी और पुण्यात्मा विद्रुध समयानुसार दिवंगत हुए और अपने सत्कर्मों के फल स्वरूप स्वर्ग लोक में सुखोपभोग करने लगे।

सुख साधन बहुत और परमार्थ का अवसर तनिक भी नहीं, ऐसे स्वर्ग में उनका दम घुटने लगा। आत्मा को सुख से नहीं, पुण्य से शान्ति मिलती है। जहाँ सुख तो रहे पर पुण्य का सन्तोष लाभ न मिले वहाँ रह कर मैं क्या करूँ? इस चिन्ता में वे निरन्तर खिन्न रहने लगे।

देवराज इन्द्र ने एक दिन उनकी खिन्नता का कारण पूछा तो उनने अपने मन की व्यथा कह सुनाई। उन्हें सुख नहीं शान्ति चाहिए। वे विलास [illegible] परमार्थ [illegible] की कृपा [illegible] करने की कामना पूर्ण होती रहे।

सुरगुरु बृहस्पतिजी ने विद्रुध को देव सभा में बहुत सराहा और कहा—सुख सुविधा से भरे हुए स्वर्ग की अपेक्षा तपस्वियों का तप लोक अधिक श्रेष्ठ है। विद्रुध देवताओं से अधिक श्रेष्ठ हैं, इसलिए इन्हें वहाँ भेजा जाय जहाँ पुण्य परमार्थ और सेवा साधना के अधिक अवसर रहते हैं। ऐसा तप लोक ही ऐसी श्रेष्ठ आत्माओं के लिए अधिक उपयुक्त है।

एक अनजान देवता ने पूछा—तप लोक से आपका प्रयोजन किस पुण्य क्षेत्र से है? देवगुरु ने कहा—मनुष्य लोक ही तप लोक है। उच्च कोटि के देवता वहाँ निवास करते हैं। सेवा और सयम से प्राप्त होने वाला सन्तोष, इस बेचारे स्वर्ग में कहाँ? वह अवसर केवल भूलोक के निवासी मानव-प्राणियों में ही उपलब्ध है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

विद्रुप की महानता के आगे देवताओं के मस्तक झुक गये। उन्हें पुण्य परमार्थ का सन्तोष लाभ करने के लिए पुनः भू लोक में भेज दिया गया। लौटने पर उन्होंने पश्चाताप का नहीं, प्रसन्नता का ही अनुभव किया।

मोह का समाधान—

हिरण्याक्ष का बध करने के उपरान्त भी जब भगवान वाराह अपने लोक को वापिस नहीं लौटे तो सभी चिन्ता होने लगी। देवता व्याकुल हुए और [illegible] तलाश करने भेजा गया। [illegible] लोक के उन्हें सर्वत्र खोज डाला। देखा तो वे अपना परिवार बनाये बैठे हैं। स्त्री-बच्चों के समक्ष क्रीड़ा संलग्न हो रहे हैं। शूकरी और उसके शिशु शावक उन्हें अपना विनोद साधन बनाये हुए हैं।

वापिस ब्रह्मलोक चलने की प्रार्थना जब वाराह जी ने अस्वीकार करदी और अपना क्रीड़ा विनोद छोड़ने को तैयार न हुए तो क्रुद्ध शङ्करजी ने त्रिशूल से उनका पेट फाड़ डाला। शरीर क्षत-विक्षत हो गया तो विवश होकर वाराह भगवान अपने लोक जा पहुँचे।

प्रतीक्षा में चिन्तित बैठे हुए देवताओं ने जब विलम्ब का कारण पूछा तो उनने कहा—"शरीर और उसकी ममता बड़ी प्रबल है। जीवधारी उसी [illegible] होकर सब को भूल जाते हैं। सुख साधनों [illegible] बिना इस माया से छुटकारा नहीं मिलता। [illegible] मेरे लिए भी वापिस लौटना कठिन था।

शिवजी हँस पड़े, उनने कहा—देवताओ ! अब तुम समझे होंगे कि मेरे विरक्त विचरण का रहस्य क्या है। आसक्ति के बधनों में बंधे हुए जीव, त्याग का आधार न लें तो उनका छुटकारा भी सम्भव नहीं। आसक्ति ग्रस्त वाराहजी की जब यह दुर्गति हुई तो दूसरों के बारे में कहना ही क्या है ?

सज्जन का स्वल्प सत्संग—

राज अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को अपने से भी अधिक विवेक शील समझ कर उसे स्वयं वर ढूँढने की आज्ञा दे दी। सावित्री [illegible] की तलाश में देश-विदेशों [illegible] कर दी।

बहुत भ्रमण के बाद उसे बनवासी सत्यवान उपयुक्त जँचा। बेचारा लकड़ी काटता और अन्धे माता-पिता की सेवा करता था वहाँ। सावित्री [illegible]

ज्योतिषी और चिकित्सकों ने सत्यवान के स्वास्थ्य की परख की तो उसे केवल एक वर्ष जीवित रह सकने योग्य घोषित किया। ऐसे व्यक्ति के साथ जो एक वर्ष जीवित रहे विवाह करने से क्या लाभ ? अश्वपति ने पुत्री को समझाया।

सावित्री ने कहा—पिताजी ! चिरकाल तक धुआं करने वाली अग्नि की अपेक्षा थोड़ी ही देर प्रकाशवान रहने वाली लपटें अधिक प्रशंसनीय होती हैं। श्रेष्ठ आत्माओं के साथ स्वल्प काल का सुहाग भी बुरा नहीं। शरीर को नहीं आत्मा को मैंने परखा है। मेरे चुनाव में देह का नहीं आत्मा का सुख ही प्रधान है।

आजीवन वैधव्य की तुलना में स्वल्पकालीन [illegible] सावित्री ने सत्यवान [illegible] करती हुई राजकुमारी भी लकड़ी काटती हुई लादशं जीवन बिताने लगी। समय आने पर उसने यम को भी परास्त किया और निकटवर्ती वैधव्य चिरस्थायी सुहाग में बदल गया।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं से लड़ पड़िये *

यों परिवर्तन सभी अखरते हैं, पर सबसे अधिक अखरने वाला परिवर्तन होता है अपने ढर्रे को बदलना। जिस गति-विधि को मनुष्य देर तक अपनाये रहता है वह आदत या स्वभाव बन जाती है। स्वभाव देर में बनता है और जब बन जाता है तो उसके बदलने में भीतर ही भीतर परेशानी अनुभव होती हैं। दूसरों से लड़ सकना सुगम है, पर अपने आपको बदलने के लिए जो लड़ाई लड़नी पड़ती है वह काफी कठिन होती है।

शक्तिशाली बनने के लिए सबसे पहला काम हमें अपनी मानसिक दुर्बलताओं से संघर्ष करना होता है। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जिस धर्मयुद्ध में प्रवृत्त होने का उपदेश दिया है वह वस्तुतः अपनी आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों से जूझने की ही शिक्षा है। असली कौरव हमारे भीतरी दुर्गुण ही हैं। चूंकि वे अपने स्वभाव में स्थान प्राप्त करके भीतर घुसे बैठे होते हैं, इसलिए प्रिय जन और स्वजन संबंधी से लगते हैं, इन्हें हटाने की इच्छा तो होती है पर इनसे लड़ते समय मोह उत्पन्न होता है। गीताकार ने अर्जुन को—जीव को इसी मोह के त्यागने का उपदेश दिया है।

बल की उपासना करने वाले हर व्यक्ति को आत्म निरीक्षण की ओर ध्यान देना पड़ता है और यह देखना होता है कि हमारे स्वभाव एवं विचारों में किन-किन बुराइयों ने प्रवेश प्राप्त किया हुआ है। प्रगति में इतना बाधक कोई शत्रु भी नहीं होता जितना अनियंत्रित आलसी और कुसंस्करी मन होता है। जिसका मन ही आस्तीन के साँप की तरह हर घड़ी त्रास देता रहेगा उसे हजार शत्रुओं से घिरे रहने के समान उद्विग्नता बनी रहेगी।

हमारी तीन चौथाई शक्ति आलस में नष्ट होती है। एक-एक पल का सदुपयोग करने वाले, क्षण भर भी व्यर्थ न गँवाने वाले, निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार निरन्तर कार्यरत रहने वाले, शरीर और मन को एकाग्र करके एक नियत दिशा में गतिशील रहने वाले व्यक्ति अपने जीवन में इतना अधिक काम कर डालते हैं कि उनकी सफलताओं को देखकर आश्चर्य होता है। लोग सोचते हैं कि भाग्य ने या किसी वरदान ने इन्हें इतनी उन्नति प्रदान की। पर सच बात यह है कि उनने अपने एक-एक क्षण को कठोर श्रम और स्थिर मनोयोग के साथ नियत लक्ष के लिए प्रयोग किया होता है।

आलसी आदमी आधे मन से अव्यवस्थित रीति से, उपेक्षापूर्वक, बेगार ढोने की तरह काम को भार रूप समझ कर, समय-कुसमय पर करते हैं। फलस्वरूप जो कुछ किया जाता है वह अधूरा, कुरूप और निराशाजनक ही रहता है। थोड़े से श्रम को वे पहाड़ की बराबर मानते हैं और उस भारभूत कार्य से थोड़ी ही देर में भारी थकान अनुभव करने लगते हैं। जिसे आलस घेरे रहेगा जो समय का मूल्य न समझेगा, जिसे श्रम से प्यार न होगा, उसे मुश्किल से एक चौथाई जीवन का लाभ मिल सकेगा तीन चौथाई शक्तियाँ तो उसकी व्यर्थ ही चली जायेंगी। आलस की हानियाँ किसी बड़ी बीमारी से कम नहीं हैं। कितने ही बीमार व्यक्ति रुग्णावस्था में भी बड़े-बड़े महत्व पूर्ण कार्य करते रहते हैं,

> ज्ञान धन से उत्तम है, क्योंकि धन की तुमको रक्षा करनी पड़ती है और ज्ञान तुम्हारी रक्षा करता है। —अली
>
> ज्ञान मनुष्य का परम मित्र है, मूर्खता उसका निकृष्ट शत्रु है। —टेम्पिल

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आलसी आदमी तो प्रमाद और दीर्घसूत्रता में ही अपना समय गंवा देता है और प्रगति के नाम पर खाली हाथ ही रहता है।

श्रम के प्रति तिरस्कार का भाव होना, काम से जी चुराना या शारीरिक श्रम करने को बेइज्जती समझना एक बहुत ही बड़ा मानसिक दोष है जो हम भारतीयों में बुरी तरह घर करता चला जाता है। पढ़े-लिखे और बड़े आदमी कहलाने वाले लोग शारीरिक मेहनत के कामों में अपनी तौहीन समझते हैं। खाते-पीते घरों की स्त्रियाँ भी अब चौका बर्तन का काम करना अपमानजनक समझती हैं। चक्की पर्दा तो बहुत दिन से विदा हो चुके। गप शप लड़ाने में, मटर गश्ती में, बेकार की बातों में लोगों का ढेरों वक्त बर्बाद होता है। वह समय यदि व्यवस्थित रूप में शारीरिक, बौद्धिक या आर्थिक स्थिति को सुधारने में लगाया गया होता तो हम आज जिस पिछड़ी हुई स्थिति में पड़े हैं उसे कभी के पार कर चुके होते। दरिद्रता और पिछड़ेपन की परिस्थितियों को समाप्त करने के लिए श्रमशीलता के प्रति भारी निष्ठा, स्फूर्ति, तत्परता और अभिरुचि का उत्पन्न होना आवश्यक है। व्यक्ति या राष्ट्र का उत्थान निरालस्यता और श्रमशीलता के ऊपर निर्भर है। आन्तरिक एवं भौतिक समृद्धि इसी आधार पर तो बढ़ती है।

> जब ज्ञान इतना घमंडी बन जाय कि रो न सके, इतना गंभीर बन जाय कि हँस न सके, और इतना आत्म-केन्द्रित बन जाय कि अपने सिवा किसी की चिन्ता न कर सके, तो वह ज्ञान, अज्ञान से भी अधिक खतरनाक होता है।
>
> —खलील जिब्रान

हमारे मानसिक कुसंस्करों में एक बहुत बड़ा कुसंस्कार यह है कि हम आर्थिक समृद्धि को ही समृद्धि मानते हैं और जीवन के अन्य सभी पहलुओं को उपेक्षित पड़ा रहने देते हैं। आदमी चौबीसों घंटे कमाई की बात सोचे और उसी गोरखधंधे में लगा रहे, यह बहुत बुरी बात है। माना कि रोटी कमाना आवश्यक है, पैसे का जीवन क्षेत्र में बड़ी उपयोगिता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरी बातों को सोचा ही न जाय। स्वास्थ्य दिन-दिन क्षीण होता चला जा रहा है विद्या बुद्धि का विकास जहाँ तक हो चुका उसे आगे बढ़ाने की कोई आकांक्षा नहीं, परिवार को सुसंस्कृत बनाने के लिए अवकाश ही न हो, सामाजिक कर्तव्यों से मानों कोई सम्बन्ध ही न हो, उपासना जैसे कोई व्यर्थ की-सी चीज हो इस प्रकार का दृष्टिकोण अपना कर लोग केवल अर्थ चिन्तन में डूबे रहते हैं।

कमाते तो हैं पर खर्च करने की जरा भी तमीज नहीं। जो पैसा अपनी और अपने परिजनों की प्रतिभा के विकसित करने में लगना चाहिए था वह व्यर्थ के आडम्बरों में, फैशन और टीम टिमाक में, कुरीतियों में, शादी और दावतों में बर्बाद होता रहता है। नशेबाजी, व्यसन और शेखी-खोरी की बेकार बातों में धन खर्च करके बड़प्पन प्राप्त करने की सोचने वाले लोग वस्तुतः यह जानते ही नहीं कि बड़प्पन चीज क्या है? बड़प्पन तो सादगी, संजीदगी सज्जनता और सुव्यवस्था में सन्निहित रहता है। जो उथले और छिछोरे दृष्टिकोण से जिन्दगी जी रहे हैं उन्हें सिर्फ ओछा और छोटा ही समझा जायगा। ये अपने मन में भले ही अपने बारे में कुछ भी सोचते रहें।

इन्द्रियों का चटोरापन, असंयम, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को चौपट कर देने के लिए सबसे घातक कारण है। मन यदि इन्द्रियों को ढील दिये हुए है, उन पर नियंत्रण नहीं करता, जो इन्द्रिय जब जैसा चाहती है तब वैसा ही करने की तैयारी होने लगे तो समझना चाहिए कि मन पर अविवेक का आवरण चढ़ गया और अब वह अपना भविष्य अंधकारमय बनाने वाले कुपथ पर चल रहा है। ऐसे ढीले-पोले मन से वही खतरा रहेगा जो असावधान ड्राइवर के हाथ में मोटर दे देने पर हो सकता

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इच्छाएँ कामनाएँ, वासनाएँ, लालसाएँ सदा त्रित होती हैं। वे आकाश पाताल तक दौड़ती दि उन्हें काबू में न रखा जाय तो अनर्थ की- अनर्थ की ही संभावना रहेगी।

आवेश उत्तेजना, चिन्ता भय भीरुता, आशंका, शा, ईर्षा, बेईमानी आदि कितनी ही दु- त्तियाँ ऐसी है जो आत्मघाती परिणाम उत्पन्न [illegible] की बहुमूल्य सामर्थ्य इन्हीं में [illegible] होती रहती है। इन दुष्प्रवृत्तियों के न होकर जितने कुविचार और जितने कुकर्म ये यदि वह न किये गये होते और वे शक्तियाँ त्मक कार्यों में लगी होती तो हम अब जितने गिरे हुए हैं तब उतने ही ऊँचे उठे होते। दोनों तियों के बीच जमीन आसमान का अन्तर पड़ता।

[illegible] अन्धविश्वासों और परम्परागत अपना जीवन जैसा कुछ आज चल रहा है [illegible] करने की आवश्यकता अनुभव होती [illegible] का इतना अभाव रहता है कि चाहते [illegible] सोचते हुए भी, कुछ कर नहीं पाते। सुधार परिवर्तन के लिए, साहस की जरूरत होती है। उपहास, और विरोध करने वालों की परवा न करते हुए विवेक और औचित्य का मार्ग अपनाने के लिए हिम्मत से काम लेना पड़ता है। यदि मन कायरता और भीरुता से भरा हुआ है, नया कदम उठाते हुए पैर काँपने लगें, उपहास और व्यंग की कल्पना से घबराहट उत्पन्न हो जाय तो फिर जीवन निर्माण जैसे महान कार्य की आशा कैसे बंधे?

मन की इन दुर्बलताओं [illegible] पड़ेगा और इसे [illegible] उसी प्रकार छुड़ाना पड़ेगा जैसे मोहग्रस्त अर्जुन को छुड़ाया गया था। संघर्ष से शक्ति उत्पन्न होती है शक्ति ही प्रगति और समृद्धि की [illegible] कुंजी हमारी मनः स्थिति से संबंधित है। यदि हम अपनी भीतरी दुर्बलताओं से लड़ने का साहस एकत्रित नहीं कर सकते-यदि हम कीचड़ के [illegible] ढेर में से निकल कर सुरभित पुष्प [illegible] धारण करने के लिए तत्पर नहीं हो [illegible] साक्षी बनने की बात सोचना [illegible] तो सहायक मात्र होते हैं। शक्ति [illegible] से ही फूटती है। जिस शक्तिधारा [illegible] मन को सुधारने और संभालने की तैयारी करे।

[illegible] बिस्मार्क जब बर्लिन के राजदूत की हैसियत में रूस के [illegible] उन्होंने खिड़की से देखा कि बाहर निर्जन स्थान में जरा सी छोटी [illegible] पर एक सिपाही पहरा दे रहा है। पूछने पर मालूम हुआ कि वह पहरा रात-दिन लगता है। इस पर बिस्मार्क को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उनने इसका कारण सम्राट 'जार' से पूछा।

उन्हें भी कुछ मालूम न था। इसलिए अधिकारियों को बुलाया गया और उनसे पूछ-ताछ हुई। उन्हें भी कुछ मालूम न था। आखिर दफ्तर के कागजात ढूँढे गये तब पता चला कि ९० वर्ष पूर्व रानी कैथराइन को उस स्थान पर उगे हुए कुछ कुदरती फूल बहुत पसंद आये। वे उन्हें खिड़की में होकर देखा करती थीं। उन्हें डर लगा कि कोई रास्तागीर उन फूलों को तोड़ न ले जाय, या कोई जानवर खा न ले इसलिए वहाँ पहरा बिठा दिया गया। तब से किसी ने यह नहीं सोचा कि वह फूल न रहने पर पहरे की जरूरत है या नहीं? और परम्परा नियम के अनुसार ९० वर्ष से उस स्थान पर दिन-रात पहरा लगता चला आ रहा है।

रूस में ९० वर्ष तक एक अनावश्यक एवं खर्चीली प्रक्रिया चलती रही, इस मूर्खता पर सब को हंसी आयेगी पर यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमारे समाज में भी आज अनेकों ऐसी ही खर्चीली और अनावश्यक परम्पराएँ चल रही हैं जो कभी भले ही उपयोगी रही हों आज सर्वथा व्यर्थ हैं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मधु संचय

मैं तुम तक कैसे आपाता मुझको पांव मिले ही कब थे ?
जो ले आये मुझे यहां तक वे भी चरण तुम्हारे ही थे।
तुमको खुश रखने को आंधी कन्धे मुझे बिठाये घूमी,
उड़ती हुई नदी ने मेरे तलवों की परछाईं चूमी,
मैं दर्शन कैसे पालेता मैं तो था अन्धा समाज-सा,
जो ले आये मुझे द्वार तक वह भी नयन तुम्हारे ही थे।
तुमने जो छू दिया अधर से मैं बंशी-सा लगा गूंजने,
और मुझे देवता समझ कर ये वृन्दावन लगा पूजने,
कैसे सामवेद रच देता मैं तो था गूंगे सितार-सा,
जो दो चार गीत बन उभरे वे भी सुमन तुम्हारे ही थे।
कैसे आ सकेगा कैसे जीवन की गहराई पूरी ?
जिसको ज्ञात नहीं है कितनी घर से मरघट तक की दूरी,
मैं निर्माण कैसे बन जाता मैं तो बांझ लता जैसा था,
जो दो चार खिले थे मुझ पर वे भी सुमन तुम्हारे ही थे।

—रामावतार त्यागी

× × ×

देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रंग से लाते हैं॥
मैं गरीबनी अति निष्किञ्चन कुछ भी भेंट नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मन्दिर में पूजा करने को आई॥
[illegible] नहीं अकिंचन, जानो हृदय चली आई।
[illegible] को विधि नहीं जानती फिरभी नाथ चली आई॥
[illegible] तुम्हारा भावन इसी पुजारिन को अपनाओ
[illegible] और निखारकर इसी भिखारिनको अपनाओ॥
[illegible] के को भूखी हृदय खिलाने आई हूं।
जो कुछ है बस यही पास है इसे चढ़ाने आई हूं॥
चरणों में अर्पित है इसको चाहे तो स्वीकार करो।
यह जो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकराओ या प्यार करो॥

—अज्ञात

× × ×

कच्चो है यह धातु तपाओ इसे,
किन्तु आकार नया दे डालो।
कच्चो है ये धातु गलाओ इसे,
किन्तु कुछ रूप नया ढो डालो।
कच्चो है ये धातु गलाओ इसे,
किन्तु प्रकाश नया दे डालो।
कच्चो है ये धातु गलाओ इसे,
किन्तु प्रकाश नया दे डालो।
कच्चो है ये धातु गलाओ इसे,
किन्तु साध्य नहीं साधन है।
कंठ छांट या चोट अनों की,
सह्य नहीं माध्यम है।

—कुमारी रमा सिंह

× × ×

देश में बलि की प्रथा रहे।
अन्धकार मत छाने पाये, रवि, शशि, तारक-दल छिप जाये,
[illegible] चुके आंसो जल जाये, [illegible]
जो कलंक धुल सके न जल से, आंसू से श्रम-सीकर बरसे,
उसे छुड़ाने को शहीद का अविरल रक्त बहे। देश में०
उसे कहीं से खोजा जाये, ये इतिहास न कहने पाये.
शीश झुका कर हमने जीवन में अन्याय सहे।
देश में बलि की प्रथा रहे।

—हरिवंश राय [illegible]

× × × ×

इतनी सी बात निभा देना।
[illegible] के पथ हमारी में, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[

सफलता के लिये क्या करें ? क्या न करें !

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि वह जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करे। लोग बड़ी सफलताओं के स्वप्न देखते हैं। बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं। अधिकांश लोग जीवन के बाह्य क्षेत्र में नाम, बड़ाई, प्रतिष्ठा, श्री, समृद्धि, उच्चपद आदि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। थोड़े बहुत अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं। इन में भी बहुत कम इन विभूतियों समृद्धियों के स्थायी सुख को भोग पाते हैं, क्योंकि ये सफलतायें बहुत कम ही ठहरती हैं।

स्वामी रामतीर्थ संन्यास लेने से पूर्व एक कालेज में प्रोफेसर थे। एक दिन बच्चों के मानसिक स्तर की परीक्षा लेने के लिये उन्होंने बोर्ड पर एक लकीर खींचदी और विद्यार्थियों से कहा "इसे बिना मिटाये ही छोटा कर दो।" एक विद्यार्थी उठा किन्तु वह प्रश्न के मर्म को नहीं समझ सका उसने रेखा को मिटा कर छोटा करने का प्रयत्न किया। इस पर स्वामीजी ने उस बच्चे का रोका और प्रश्न को दुहराया। सभी बच्चे बड़े असमंजस में पड़ गये। थोड़े समय में ही एक लड़का उठा और उसने उस रेखा के पास ही एक बड़ी रेखा खींच दी। प्रोफेसर साहब की खींची हुई रेखा अपने आप छोटी होगई। उस विद्यार्थी की बुद्धि की सराहना करते हुए स्वामी जी ने कहा "विद्यार्थियो ! इससे आपको शिक्षा मिलती है कि दुनियाँ में बड़ा बनने के लिए किसी को मिटाने से नहीं वरन् बड़े बनने के रचनात्मक प्रयासों से ही सफलता मिलती है। बड़े काम करके बड़प्पन पाया जा सकता है।"

जो लोग दूसरों को मिटाकर, दूसरों को नुकसान पहुँचा कर, उनकी नुकताचीनी करके बड़े बनने का स्वप्न देखते हैं उनका असफल होना निश्चित है। यदि ऐसे व्यक्तियों को प्रारम्भिक दौर में कुछ सफलता मिल भी जाय तो अन्ततः उन्हें असफल ही होना पड़ेगा क्योंकि सफलता का नियम धनात्मक हैं, ऋणात्मक नहीं। सन्त विनोबाजी के शब्दों में सफलता के सिद्धान्त की व्याख्या सहज ही समझी जा सकती है। उन्होंने कहा है "पड़ोसी के पास सात सेर ताकत है और मेरे पास १० सेर। यदि दोनों परस्पर टकरायेंगे तो परिणाम में १०-७=३ सेर ताकत ही बच रहेगी। दोनों पक्षों को ही हानि होगी दूसरी स्थिति में यदि मिलकर श्रम किया जायेगा तो १०+७=१७ सेर की ताकत पैदा होगी जिससे अधिक मात्रा में सफलता अर्जित की जा सकेगी। मेरे दो हाथ और आपके दो हाथ मिलकर २+२=४ हाथ होते हैं। किन्तु जब परस्पर टकरायेंगे तो २-२=० नतीजा शून्य ही निकलेगा।

> प्रसन्न रहना हमारा कर्तव्य है। यदि हम प्रसन्न रहेंगे तो अज्ञात रूप से संसार की बहुत भलाई करेंगे।
>
> —स्टीवेंसन
>
> मनकी प्रसन्नता ही व्यवहार में उदारता बन जाती है। —प्रेमचन्द

जब लोग दूसरों की गर्दन काटकर स्वयं पनपने की कोशिश करते हैं, दूसरे के बढ़ते हुए पैरों को खींचकर उनको गिराकर आगे बढ़ने के स्वप्न देखते हैं, दूसरों का खून चूसकर अपने को मोटा बनाना चाहते हैं, दूसरों को उजाड़ कर अपना घर बसाना चाहते हैं, दूसरों के सुख छीनकर स्वयं सुखी बनना चाहते हैं तो वहाँ इन्सानियत का नहीं शैतान का नियम लागू हो जाता है जिसके परिणाम अन्ततः प्रतिकूल दुःखप्रद ही मिलेंगे। इस अमानवीयता के बर्बर नियम को धरती पर पतन, असफलता, विनाश की कब्रें पद पद पर बनी हुई हैं। और किसी भी क्षण मनुष्य अपने उन्माद के साथ उनमें सदा के

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

लिए सो जायगा। दूसरा को उजाड़ने के प्रयत्न में मनुष्य स्वय ही उजड़ जाता है, दूसरों का गला काट-नालों का स्वयं ही अपना गला कटाने को मजबूर होना पड़ता है। दूसरों के विनाश, असफलता, पतन के स्वप्न देखने वालों के जीवन में ही वह दृश्य उपस्थित हो जाता है। मानवता का लम्बा-चौड़ा इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब उक्त उन्माद में आकर मनुष्य ने जन जीवन पर कहर ढाये तो वह स्वयं ही नेस्त नाबूद हो गया। रावण,बाणासुर,कंस, दुर्योधन, हिटलर, मुसालिनी, चंगेज खाँ. नादिरशाह जैसे शक्ति सम्पन्न कुशल नीतिज्ञ चतुर व्यक्तियों को भी हमेशा के लिए नष्ट हो जाना पड़ा। इतिहास में सहस्र ही ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाते हैं।

> सुशासना द्वारा विवेक होता है और विवेकवान होने से शोक तथा हर्ष दोनों नहीं होते।
>
> —रचा० दयानन्द
>
> विवेकशील कीचड़ में पड़े रत्न को भी ग्रहण करते हैं, कीचड़ में पड़े होने से उस अस्पृश्य नहीं मानते।
>
> —हरिऔध

किसी भी वृक्ष को उगने के लिए प्रकृति ने मिट्टी जलवायु, प्रकाश आदि की पर्याप्त व्यवस्था सृष्टि में में कर रखा है। साथ ही विभिन्न बीजों में उनके गुण धर्म प्रतिष्ठित कर दिए हैं, जो पौधों की निश्चित अवस्था में चलकर प्रकट होते ही हैं। इसके अनुसार बोया गया बबूल का बीज कालान्तर में काँटेदार बड़ा वृक्ष बनेगा, आम का बीज बाने पर परिणाम विशाल वृक्ष, ठण्डी छाया और मधुर फलों के रूप में मिलेगा। यही बात संसार के अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती जाती है। आग जलाने पर ज्वाला और ताप, प्रकाश ही पैदा होंगे, ठण्ड नहीं मिल सकती। पानी से गोलाग्न दूर नहीं किया जा सकता। विश्व विधायक ने विभिन्न कर्म और उनके फल निश्चित कर दिए हैं जिनसे बचना असम्भव है।

बुराई का परिणाम बुरा ही होगा, पाप का अंत पाप में ही होता है। ईर्ष्या, द्वेष, दूसरों को हानि पहुँचा कर, दूसरों का अहित सोचने से करने से ही बुरे का श्रीगणेश हो जाता है। मन वचन कर्म से उद्भूत इस तरह के विजातीय सूक्ष्म परमाणु जहाँ होंगे पहले वहीं हमला करेंगे। यही कारण है कि दूसरों का अहित चाहने वाले, दूसरों को हानि पहुँचाने वाले, भय, आशंका, आक्रोश, अशान्ति, उद्विग्नता, एव मानसिक उत्तेजना से ग्रस्त होकर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असफल होने लगते हैं। वातावरण उनके विपरीत बन जाता है। उन्हें किसी की सद्भावना, हार्दिक सहयोग नहीं मिलता। दबाव भय या चापलूसी के रूप में भले ही लोग उनका समर्थन करें किन्तु उसमें सचाई नहीं होती। और इन सबके कारण जीवन के हर मोर्चे पर मनुष्य को असफलता का सामना करना पड़ता है।

यह एक आम शिकायत है कि "सचाई न्याय, ईमानदारी के मार्ग पर चलकर लोगों को नुकसान उठाने पड़ते हैं। ऐसे लोग सदैव घाटे में रहते हैं असफल होते हैं। दूसरे लोग जो बदमाशी, अन्याय, अनीति बेईमानी का रास्ता अपनाते हैं वे सदैव फायदा उठाते हैं-लाभ में रहते हैं जीवन में सफल होते हैं।

दूसरी बात यह है कि अच्छाई के मार्ग पर चलकर भी मनुष्य यदि अपने क्षेत्र में पर्याप्त श्रम उद्योग नहीं करता तो उसकी सफलता सदैव अनिश्चित ही रहेगी, बल्कि असफलता ही मिलेगी। आम के गुण धर्मों से प्रभावित होकर उसका बीज बो देने मात्र से काम नहीं चलता। बीज बोने के बाद भी आवश्यक खाद,पानी, सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। और फिर लम्बे समय के धैर्य की आवश्यकता होती हैं। क्योंकि उपयोगी महत्वपूर्ण फल देर से ही मिलते हैं। इसबीच में भी आनेवाले तूफान आँधी विघ्न, बाग को उजाड़ देने वाले पशु पक्षियों का आक्रमण भी फलप्राप्ति में कम खतरनाक नहीं होते। यदि कोई मनुष्य यह सब तो करे

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

नहीं और आम पाने की आकांक्षा रखे तो उसकी आशा कभी पूरी नहीं होगी। और इस असफलता का कारण आम बोने का नहीं अपितु मनुष्य के प्रयत्न का अभाव ही माना जायगा ।

दूसरी ओर बबूल के पेड़ लगाने में, झाड़ियों की खेती करने में तो विशेष श्रम भी नहीं करना पड़ता, थोड़े ही समय में खेती लहलहा उठेगी, यह निश्चित है। न पानी देना पड़ेगा न और कुछ, अविवेकी, अनजान लोग इस हरियाली को देखकर अपने अंकुरित हुए आमों के बगीचे को छोड़ सकते हैं किन्तु वे यह नहीं जानते कि इस हरियाली के भविष्य में असंख्यों भयंकर कांटों का अस्तित्व छिपा है ।

चोर उचक्के, गुण्डे, बदमाश, बुरे मार्ग पर चलकर जो कुछ सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं तो इसके मूल में उनकी कार्य – कुशलता, बुद्धिमानी, लगनपूर्ण प्रयत्न, उत्साह आदि ही होते हैं। यदि अच्छे रास्ते पर चलकर इन बातों को अपनाया जायतो सफलता और सद्परिणाम उसी तरह निश्चित हैं जैसे किवाड़ खोल देने पर प्रकाश का आगमन। सच्ची सफलता के लिये अच्छाई, नैतिक आदर्शों से प्रेरित होकर सबके हितमें अपना हित, सबकी भलाई और उन्नति हो ऐसे कामोंमें लगा रहना आवश्यक है। ऐसे लोगोंको बाह्य दृष्टि से होने वाली असफलता में भी उनकी सफलता है। उनके प्रत्येक रचनात्मक प्रयत्न में ही प्रत्येक कदम पर सफलता है । दर असल इस मार्ग के पथिकों के कोष में तो असफलता नाम का शब्द ही नहीं होता।

इस तरह की शिकायत करने वाले लोगों की पहली बात तो यह है कि उनके मनकी स्थिति दोनों पक्षों में बराबर बटी होती है। थोड़े बहुत झुकाव, संस्कार एवं बुद्धि की प्रेरणा से वे [illegible] अपनाते हैं किन्तु उनपर ठोस अमल नहीं करते। अपने आदर्शों, सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ निष्ठावान स्व लुट जाने पर भी शिकायत न करने वाले ही उच्च स्वत्वों के महत्व को समझते हैं। जिनके लिए बाह्य जीवन की सफलता असफलता गौण होती है। वस्तुतः बाह्य सफलता असफलताओं की कसौटी पर आदर्शों का पररखना उनके प्रति सच्ची निष्ठा, दृढ़ता का अभाव ही है।

जिन दिनों पंजाब भर में उर्दू और फारसी का जोर था, हिन्दी की ओर किसी का ध्यान भी न था उन दिनों गो० गणेशदत्त जी ने हिन्दी प्रचार का व्रत लिया वे नियमित रूप से लोगों को हिन्दी पढ़ावेंगे। यह काम बड़ा कठिन था, कोई पढ़ने को ही तैयार न होता था। निदान उन्होंने एक टूटा कनस्तर हाथ में लेकर लायलपुर के सारे शहर में स्वयं यह मुनादी की कि "जो भाई हिन्दी पढ़ना चाहे निःशुल्क हिन्दी पढ़ाई जायगी।" मुश्किल से कुछ छात्र मिले तो उनको पढ़ाने के लिये जगह का प्रबंध न हुआ। इस पर उन्होंने एक खुले स्थान पर बैठ कर मिट्टी के तेल की कुप्पी के प्रकाश में अपनी हिन्दी पाठशाला आरम्भ करदी। उनकी यह पाठशाला कुछ समय बाद हाईस्कूल बन गई। इतना ही नहीं गोस्वामी जी ने भारत विभाजन होने से पूर्व पंजाब में ६० डिग्री कालेज, १५० इन्टर कालेज [illegible] कन्या पाठशालाएँ, १०० मिडिल स्कूल और ४ ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किये जो अब तक बड़ी शान से चल रहे हैं।

❀

लूथर ने इक्कीस वर्ष की आयु में धार्मिक सुधारों के लिए क्रान्तिकारी हलचल पैदा करदी थी। नेपोलियन [illegible] बीस वर्ष की आयु में इटली पर विजय प्राप्त की थी। न्यूटन ने इक्कीस वर्ष का होने से पूर्व ही अपने महत्वपूर्ण [illegible] कर डाले थे। चेस्टरटन ने जब काव्य क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी प्रतिभा से सबको आश्चर्य में डाल दिया था तब वह इक्कीस वर्ष का था। विक्टर ह्यू गो जब पन्द्रह वर्ष के थे तब उनने कई नाटक लिख लिये थे और तीन पुरस्कार जीते थे। सिकन्दर जब दिग्विजय को निकला तब कुल बाईस वर्ष का था। फ्रांस की क्रान्ति का नेतृत्व करने वाली देवीजोन सत्रह वर्ष की थी।

यदि उत्कट इच्छा और अदम्य भावना जागृत होजाय तो अल्प आयु में भी मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है, बहुत कुछ बन सकता है ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मानव-जीवन का अमृत-प्रेम

सच्चा प्रेम केवल देना जानता है। उसमें बदले के लिए कोई आकांक्षा नहीं होती। वह प्रेमी का हित चाहता है और इसके लिए उसके पास जो कुछ छोटी-मोटी सामर्थ्य है उसको लेकर वह उसका भला करता है। वह कभी सोचता भी नहीं कि इसका प्रतिफल मुझे मिलेगा। जिस चीज के बारे में साचा तक नहीं गया था वह यदि न मिले तो किसी को भला उससे कोई दुःख क्यों होगा? कोई उसके लिए शिकायत क्यों करेगा?

ईसा ने कहा—"परमेश्वर की इच्छा पर मैं अपना सर्वस्व सोंपने को तैयार हूँ। इस दुनियाँ की कोई चीज मैं उससे नहीं चाहता। मैं उस इस लिए प्यार करता हूँ क्यों कि वह प्यार के हा योग्य है। परमेश्वर में क्या-क्या शक्ति और विशेषता हैं इसे जानने की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है, क्योंकि उससे मैं कोई सिद्धि या अधिकार नहीं चाहता। मेरे लिए इतना ही जानना पर्याप्त है कि वह प्रेममय है। प्रेम उसे प्रिय है।"

> यदि कोई दुर्बल मनुष्य तुम्हरा अपमान करे तो उसे क्षमा करदो, क्योंकि क्षमा करना वीरों का ही धर्म है, परन्तु अपमान करने वाला यदि बलवान हो तो उसको अवश्य दण्ड दो।
>
> —गुरु गोविन्दसिंह

यदि हम किसी से प्रेम करते हैं तो उसकी बुराइयाँ भी अप्रिय नहीं लगतीं,किन्तु यदि किसी से द्वेष है तो उसकी अच्छाइयाँ भी दोष सरीखी लगती हैं। कोई धनवान व्यक्ति यदि हमें किसी कारण खटकता है तो उसकी कमाई बेईमानो की दिखाई पड़ती है, उसका कारोबार ठगी, जालसाजी और चोरी से भरा प्रतीत होताहै। पर यदि अपना कोई मित्र धनी हो तो उसके परिश्रम की, भाग्य की, बुद्धि कौशल के भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। कहते हैं कि "अपना काना लड़का भी सुन्दर लगता है औ पराया सुन्दर बालक भी भौंदू जैसा दीखता है। प्रेम में ऐसी ही विशेषता है, केवल प्रेम पात्र ही नहं उसकी वस्तुएँ भी सुन्दर, निर्दोष एवं उत्तम लग लगती हैं, किन्तु इस प्रेम भावना के हटते ही सब कु कुरूप, त्रुटिपूर्ण, हानिकारक, अवांछनीय एवं भयक लगने लगता है।

ईश्वर का सच्चा प्रेमी अपने प्रेम पात्र परमेश्व से कहता है "हे प्रभु, इस दुनियाँ में जो दुःख मौजू हैं, मैं उनसे डरता नहीं। इस दुनियाँ में पाप मौजू हैं, मैं उनके दड भुगतने मे तेरी रिआयत न चाहता। धन स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बुद्धि आदि सम्पदाए प्राप्त करने के लिए भिखारी बन कर तेरे दरवा पर नहीं आया और न मुक्ति की, स्वर्ग की कामन के लालच में फिर रहा हूँ। मुझे जन्मने और मर दे। अपने बोये हुए कष्टों को काटते हुए मुझे तुझ कुछ शिकायत नहीं। मैं एक ही आकांक्षा करता हूं तू मुझ अपने से प्यार करने दे। प्यारे के लि प्यार। सिर्फ प्यार के लिए प्यार।"

कई व्यक्ति प्रेम की असफलता का रोना रोते है वे कहते हैं हमने बड़े मन से प्यार किया पर सा ने उसका बदला बेबफाई में चुकाया। ऐसी शिकाय करने वाले प्रेम की वास्तविकता से बहुत दूर हैं प्रेम में केवल देना ही देना है, उसमें लेने का, प्रतिफ का, बदले का, प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ बद पाने के लिए प्रेम किया जाता है वहाँ तो विशु व्यापार है। व्यापार में कभी लाभ होता है तो क घाटा भी उठाना पड़ता है। पासा खेलने में क वह चित्त पड़ता है कभी पट्ट। बदले के लिए कि हुआ प्रेम भी एक बाजी खेलने के समान है, उस हार जीत दोनों ही हो सकती हैं। जैसा दांव फें जाय वैसी ही सफलता असफलता सामने आ जा है। व्यापारिक प्रेम—बाजारू मुहब्बत करने वा

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

की कौड़ी सदा चित्त ही नहीं पड़ती। कभी-कभी निराशा भी हाथ लगती है। सामने वालायदि अधिक उस्ताद हुआ तो अपना दाव चला कर अलग होजाता है। इस प्रकार के प्रेम में दोनों पक्षों में से किसी एक को अवश्य ही शिकायत करनी पड़ती है। एक पहलवान तो गिरेगा ही। खरीद-बेच करने वालों में एक को लाभ होता है तो दूसरे को घाटा। इसमें पश्चात्ताप या दोषारोपण करना व्यर्थ है।

भोगेच्छा को प्रेम कहना एक बहुत बड़ी प्रवंचना है। प्रेम तो आत्मा में ही हो सकता है और भोग शरीर का किया जाता है। इसलिए जिनके प्रेम के पीछे भोग की लालसा छिपी है उनकी दृष्टि शरीर तक ही है। आत्मा का भोग नहीं हो सकता। वह स्वतन्त्र है, वह किसी के बंधन में नहीं आती। बंधन [illegible] शरीर बंधता है। सच्चा प्रेम आत्मा से ही किया जाता है उसमें क्षुभन, पीड़ा, बेचेनी, बेबसी, निराशा कुछ नहीं है, न उसमें विरह है, न वेदना, इन दोनों ही विषों से वह मुक्त है। जिससे प्रेम करना हो उसके शरीर पर घात न लगाई जाय, जिसका शरीर भोगना हो उसके साथ प्रेम का नाटक न किया जाय यही उचित है।

प्रेम करने का उद्देश्य अपने आत्मा को प्रेम रस से सरावोर करना है। उसका और कोई प्रतिफल नहीं। भौतिक दृष्टि से प्रेमी घाटे में रह सकता है, उसे ठगा जा सकता है, धोखा हो सकता है और ऐसा त्याग करता है जिससे उसे स्वयं बड़ी कठिनाई उठानी पडे। किन्तु प्रेम भावनाओं के उत्पन्न होने के कारण आत्मा में जो स्वर्गीय आनन्द अविर्भूत होता है उसका मूल्य बहुत है। इतना अधिक है कि उसकी तुलना में सब कुछ गँवाना पड़े तो भी प्रेमी नफे में ही रहता है।

ज्ञान दान का प्रतिफल धन के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिये। निस्वार्थ शिक्षण का ही प्रभाव जन मानस पर पड़ता है।"

यह शास्त्र वचन गरीबी पद्मनाभ ने सुन कर विचार किया और विचार करके उसे कार्यान्वित करने की ठानी।

पद्मनाभ कथा कहते थे। कथा में जो धन चढ़ाया जाता था उसी से अपनी गुजर करते थे। पर जब उनके अन्तःकरण ने यह मान लिया कि ज्ञान दान का प्रतिफल स्वीकार नहीं करना चाहिये तो उसे एक सच्चे विचार की तरह उस लक्ष्य को कोई रूप से लाना ही था।

उन्होंने आजीवन हरिकथा कहकर जन मानस से भक्ति भावना जागृत करने का उपना क्रम यथावत् जारी रखा। पर गुजारे के लिये लकड़ी काटकर बेचने का धंधा अपना लिया। लकड़हारे की कथा जनता को और अधिक हृदयग्रही बनी और कथावाचक का भी कल्याण हुआ।

\+ \+ \+

महात्मा रामानुजाचार्य अपनी शारिरिक दुर्बलता के कारण नदी स्नान करने जाते हुए लोगों का सहारा लेकर जाया करते थे। जाते समय वे ब्राह्मण के कंधे का सहारा लेते और आते समय शूद्र के कंधे पर हाथ रखकर आते।

लोगों ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—भगवान्, शूद्र के स्पर्श से तो आप अपवित्र हो जाते हैं, फिर स्नान का महत्व क्या रहा ?

आचार्यजी मुसकराये उनने कहा—स्नान से मेरी देह मात्र शुद्ध होती है। मनका मैल तो अहंकार है। जब तक मनुष्य में अहंकार शेष है तब तक उसे मनका मलीन ही कहा जाता है। मैं शूद्र का स्पर्श करके अपने मनकी मलीनता स्वच्छ करता हूँ। मैं किसी से बड़ा नहीं, सब मुझसे ही बड़े हैं। शूद्र भी मुझ प्रभू से श्रेष्ठ है। इसी भावना को स्थिर करने के लिये मैं शूद्र का सहारा लिया करता हूँ।

उत्तर युक्ति-युक्त था पूछने वालों का ठीक समाधान हो गया।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* परिवार-निर्माण के स्वर्णिम-सूत्र *

अपने परिवार के जिन लोगों को नियति ने एक सूत्र में बाँध कर हमें सौंपा है, उनमें भी अन्य मनुष्यों की तरह दोष-दुर्गुण होने संभव हैं। उनकी प्रतिक्रिया अपने मन पर प्रतिकूल होनी भी स्वाभाविक है। पर यह स्थिति अकाट्य नहीं है। कोई बुद्धिमान चाहे तो इसे बदल भी सकते है। दोषों की भाँति गुण भी हर किसी में होते हैं। अपने परिवार के जिन व्यक्तियों को हम दोषयुक्त देखते हैं उनमें भी कुछ गुण होंगे ही, यदि उन गुणों पर अधिक ध्यान दिया जाय, बढ़ाया और प्रोत्साहन दिया जाय तो निश्चय ही उनकी मात्रा बढ़ेगी। बहुत चर्चा करने से दोष भी बढ़ते हैं और गुण भी बढ़ते हैं। दोषों की चर्चा कम करके गुणों को कहा, सुना और समझा जाय तो निश्चय ही यह सुधार का बहुत अच्छा तरीका सिद्ध होगा। उपेक्षा करने से दोष भी घट जाते हैं।

> जो महापुरुष हैं वे संसार के ज्ञान को अपने ही माहात्म्य से ग्रहण करते हैं और उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ कर जगत में उसकी सचाई का प्रकाश चमका देते हैं। —रवीन्द्र
>
> धर्म को परिष्कृत करने एवं लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिये महापुरुषों की सब युगों में बड़ी आवश्यकता होती है।
>
> —हरिभाऊ

दोषों की चर्चा बार-बार सुनने से मनुष्य हताश होता है, अपने को तिरस्कृत अनुभव करता है, और धीरे-धीरे निर्लज्ज एवं ढीठ बनता चला जाता है। कभी एकान्त में बहुत आदर और प्रेमपूर्वक वातावरण में दोषों की ओर ध्यान दिलाना, जिन परिस्थितियों में उसे उन भूलों का शिकार बनना पड़ा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना और अन्ततः उन्हें छोड़ने की आवश्यकता एवं उपयोगिता बताना लाभदायक हो सकता है। उन भूलों को छोड़ने के लिए कोई व्यवहारिक तरीका भी सुझाया जाना चाहिए। इस प्रकार किसी की बुराइयों को घटाने या हटाने में सुविधा होगी। किन्तु यदि उसे सबके सामने तिरस्कृत एवं लांछित किया जायगा तो वह भूल को छोड़ने की अपेक्षा चिढ़कर और उलटा आचरण करेगा। दबाव से तत्काल किसी को विवश किये जाने पर केवल सामयिक रोक थाम हो सकती है। दबा हुआ असन्तोष एवं प्रतिरोध किसी अन्य रूप में फूटता है तो वह और भी बुरा पड़ता है।

दोषों को सुधारने के लिए बहुत ही धैर्य और संयम की आवश्यकता है। प्रेम और सेवा, सहानुभूति से लोगों के मन पर अपनी छाप छोड़ने वाले लोगों के अनुरोध पर कठोर मन वाले लोगों का भी हृदय परिवर्तन होते देखा गया है। सहनशीलता, क्षमा और उदारता के आधार पर बुरों को भला बनाया जा सकता है। आतंक, गाली-गलौज, मार-पीट, दबाव, निंदा, दुराग्रह के आधार पर क्रिया तो रुक सकती है पर मन नहीं बदल सकता। जिसका मन नहीं बदला वह सुधरा कहाँ? भीतर ही भीतर सुलगते रहने वाली चिनगारी तो कभी विस्फोट के रूप में भी प्रकट हो सकती है। इसलिए सुधार के कार्य में धैर्य रखने, प्रतीक्षा करने और क्रमिक परिवर्तन होने का तरीका ही अच्छा है। हमारी इच्छानुसार दूसरे लोग तुरन्त सुधर जाँय ऐसी अधीरता से लाभ नहीं हानि ही होती है।

जो लोग अपने साथ सम्बद्ध हैं उनको साथ लेकर चलने के लिए उदारता और सहनशीलता का भारी महत्व है। शंकर जी को सबसे बड़ा देवता इसीलिए माना गया है कि उनके समाज में,

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

भूत, पलीत, सर्प, सिंह सभी के लिए आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिनके मस्तक पर ज्ञान की गंगा और प्रेम का चन्द्रमा विराजमान होता है सचमुच वे बड़े उदार होते हैं और अपने साथ खोटे खरे सभी को निवाह लेते हैं। कितने ही उदारहृदय व्यक्ति अपनी फूहड़, कर्कशा, कुरूप, रोगिणी, मूर्खा यहाँ तक कि शीलरहित पत्नी को भी बड़े आदरपूर्वक जीवन भर निवाहते हैं और अपनी ओर से कर्तव्य-पालन में रत्तीभर भी कमी नहीं रहने देते। इसी प्रकार उदार महिलाएँ अपने पतियों में अनेक दोष रहते हुए भी उन्हें सहन करती हुई, निवाहती हुई, जिन्दगी पूरी कर लेती हैं। यह बड़प्पन का चिह्न है। मनुष्यता का गौरव इस प्रकार की सहनशीलता में ही होता है।

कई बार बुढ़ापे की कठिनाइयों के कारण माता-पिता चिड़चिड़े हो जाते हैं और अनुपयुक्त बातें करने लगते हैं। समझाने बुझाने में अपना अपमान मानते और खिन्न होते हैं। इन परिस्थितियों में सहनशीलता ही सबसे उपयोगी नीति सिद्ध होती है। उनकी बातों को धैर्य और सहानुभति के साथ सुना जाय और जितना संभव हो उतना आदेश तुरन्त मानकर बाकी बात को पीछे के लिए छोड़ दिया जाय तो तात्कालिक झंझट तुरन्त शान्त हो सकता है।

कई बच्चे बड़े नटखट होते हैं, उनके नये रक्त की चंचलता कुछ न कुछ करने को विवश करती है। अनुभव के अभाव में जो करते हैं वह गड़बड़ जैसा बन जाता है। इन परिस्थितियों में बच्चों पर बरस पड़ना, उन्हें बुरी तरह धमकाना या तिरस्कृत करना, अपना माथा ठोकना और खिन्न होना उचित नहीं। उनकी कुछ बातों को अनदेखा-अनसुना किया जा सकता है, कुछ को हँस मुस्करा कर विनोद के रूप में लिया जा सकता है, कुछ के लिए उन्हें मीठी झिड़की दी जा सकती है, और कुछ ऐसा भी सुझाया जा सकता है कि वे किसी उपयोगी खेल या कार्य में अपनी चंचलता को प्रयुक्त कर सकें। इस प्रकार बालकों के ऊधम से नाकोंदम रहने वाली समस्या सहनशीलता के आधार पर बहुत ही हलकी और छोटी प्रतीत होने लग सकती है।

शरीर में नये खून की तेजी और मस्तिष्क में अनुभव की कमी होने के कारण अक्सर घर के वयस्क लड़के लड़कियां कुछ न कुछ ऊट-पटाँग करते रहते हैं। उनमें जोश तो होता है पर होश नहीं। पच्चीस वर्ष से कम की आयु 'गधा पच्चीसी' कही जाती है। उस अवधि में होशियार बच्चों में भी न्यूनाधिक गधापन बना रहता है। इस उम्र के बच्चों पर काबू रखना भारी चतुरता और दूर-दर्शिता का काम है। समझाना, धमकाना, प्यार करना, प्रोत्साहन देना, सहन करना इन सभी साधनों को समन्वय करके नवयुवकों का मार्ग-दर्शन करना

> शुद्ध न्याय में शुद्ध क्या होगी अपेक्षा।
> न्याय का विरोध करने वाली दया, दया नहीं
> बल्कि क्रूरता है। —म० गांधी
>
> हम सभी ईश्वर से दया की प्रार्थना करते
> हैं और वही प्रार्थना हमें दूसरों पर दया करना
> भी सिखाती है। —शेक्सपियर

होता है। राजा जिस प्रकार साम, दाम, दंड, भेद की नीति के सहारे प्रजा पर शासन करता है उसी प्रकार परिवार का संचालन करने के लिए गृहपति में आवश्यक दूरदर्शिता रहनी चाहिए।

आतुर, उत्तेजित, असहिष्णु, अधीर, निराश, कटुभाषी, छिद्रान्वेषी, प्रकृति के गृहपति अपने इन्हीं दोष दुर्गुणों के कारण सारे परिवार को अव्यवस्थित कर देते हैं। घर के सदस्यों में एक-दो ऐसे भी हों जिनका व्यक्तित्व निखरा हुआ न हो तो बाकी लोग उन्हें निवाहते हुए घर की व्यवस्था बनाये रह सकते हैं। परस्पर मनोमालिन्य के अवसर मानवीय दुर्बलताओं के कारण प्रायः नित्य ही आते रहते हैं समझदार लोग उनकी उपेक्षा करते हैं और आत्मी

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

यता, सहिष्णुता एवं उदारता के आधार पर परिवार संस्था को विघटित होने से बचाये रहते हैं। समाज में प्रतिष्ठा केवल उन्हीं परिवारों की सुरक्षित रहती है जिनमें दूरदर्शिता और उदारता की आवश्यक मात्रा मौजूद है। इसके अभाव में धन, विद्या पद, प्रतिष्ठा आदि सब कुछ होते हुए भी क्षुद्रता और संकीर्णता के कारण घटित होती रहने वाली छोटी-मोटी घटनाओं के कारण वह परिवार अपनी प्रतिष्ठा एवं सुदृढ़ता खोता चलता है और कुछ दिन में वह बुरी तरह बिखर भी जाता है।

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न कलपुर्जे मिलकर पूर्णता होती है और उन सबके ठीक काम करने पर निरोगिता रहती है, उसी प्रकार परिवार का उचित पक्ष मानव-जीवन की सुव्यवस्था का ठोस आधार बनता है। अन्य सारे सुख साधन एक ओर और परिवार का सुसंतुलन यदि एक ओर रखा जाय तो पारिवारिक जीवन का महत्व अधिक मानना पड़ेगा। जिन लोगों के साथ मिल-जुल कर जीवन क्रम चलाना पड़ता है उनकी व्यवस्था अव्यवस्था का अपने ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है। अशान्त और विक्षुब्ध पारिवारिक जीवन लेकर कोई व्यक्ति न तो सन्तुष्ट रह सकता है और न प्रसन्न। भले ही बाहरी सुविधाएँ कितनी बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो।

कभी-कभी संयोगवश भी किसी परिवार में अच्छे या बुरे व्यक्तियों का बाहुल्य होता है। अव्यवस्था रहते हुए भी समझदारी का मंगलमय दौर बना रहता है। कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी दुर्भाग्य पीछा नहीं छोड़ता और कुपात्रता अपना नंगा नाच करती है। यह अपवाद हैं और कभी-कभी कहीं-कहीं ही देखने को आते हैं। आमतौर से जिन परिवारों को सद्भावना की जमीन पर उगाया गया है, स्नेह से सींचा और सहिष्णुता का खाद दिया गया है वे हरे-भरे रहते और फलते-फूलते हैं। गरीब परिवारों में स्वर्ग सी एकता एवं शान्ति देखी गई है और अपार ऐश्वर्य वाले कुटुम्ब ईर्षा द्वेष की अग्नि में जलते रहते हैं। स्वार्थ, संकीर्णता, असहिष्णुता जहाँ भी रहती है वहीं नरक उत्पन्न करती है, पारिवारिक जीवन में इन तत्वों की अभिवृद्धि रहेगी तो वहाँ भी नरक के दृश्य ही उपस्थित रहेंगे।

पारिवारिक प्रगति एवं शान्ति मानव जीवन की एक श्रेष्ठ सफलता मानी गई है। इस विभूति का वरदान उन्हें ही मिलता है जो मानव स्तर की उत्कृष्टता का महत्व समझते हैं और इन दिव्य सम्पदाओं से घर के प्रत्येक सदस्य को मनोभूमि को परिपूर्ण बनाने के लिए तत्परतापूर्वक प्रसन्न करते रहते हैं।

एक बार किसी जंगल में कुछ खरगोश इकट्ठे हुए। सबने अपनी-अपनी कठिनाइयाँ बताईं। गर्मी के दिन, चारे का अभाव, शिकारी जानवरों का पीछा करना आदि अनेकों दिक्कतों से वे दुखी थे। फिर ब्रह्मा जी को भी उनने कोसा कि उन्हें इतना असमर्थ बनाया कि किसी बड़े जानवर से लड़ नहीं सकते, सींग भी नहीं दिये, इतना छोटा भी बनाया, यह हमारे साथ सरासर अन्याय है।

बहुत देर दुख गाथा कहने के उपरान्त एक खरगोश ने कहा, ऐसा दुर्बल जीवन जीने से क्या लाभ है चलो आत्म-हत्या करके सब दुखों से छुटकारा पावें। सब सहमत हो गये और एक तालाब में डूबने के लिए चल दिये। तालाब के किनारे बहुत से मेंढक बैठे हुए थे। वे उन्हें देखकर डरे और भाग कर पानी में छिप गये।

तब एक समझदार खरगोश ने कहा—मित्रो! अब हमें आत्म-हत्या करने की जरूरत नहीं है। जब हमसे भी छोटे और दुर्बल मेंढक जैसे जीव इस संसार में मौजूद हैं जो हमें देखकर भी डरें, तो हमें अनुभव करना चाहिए कि जिस प्रकार हमसे और बहुत से श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार हमें भी बहुतों से श्रेष्ठ बनाया गया है।

अपने से छोटे और दुखी लोगों के साथ अपनी तुलना करने से सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आर्थिक समस्या की नींव में

आज के मनुष्य का जीवन आर्थिक उपार्जन में ही पूर्ण रूपेण लगा हुआ है, यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जीवन के पारमार्थिक उच्च तत्वों के लिए यह कहकर टाल दिया जाता है "क्या करें पेट तो भरता ही नहीं।" पचास साठ रुपये से लेकर हजारों रुपया तक कमाने वाले सभी यही शिकायत करते मिलते हैं—क्या करें खर्चा ही नहीं चलता।

परिवार के लिए खाने-पीने का सामान ईंधन, कपड़े, लत्ते, साबुन, तेल, मकान किराया तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति एक बँधी हुई थोड़ी बहुत रकम में हो जाती है। इसका अनुमान ८०-१०० रु० तक पाने, वालों के जीवन से सहज ही लगाया जा सकता है। रोज कमा कर पेट भरने वाला मजदूर भी रोटी कपड़ा, रहने को घर उपलब्ध कर ही लेता है। भूखा तो शायद ही कोई मरता हो। आर्थिक तंगी का मुख्य कारण है मनुष्य की विकृत इच्छायें, फिजूलखर्ची की आदत। ऐसे लोग शरीर निर्वाह के लिए रोटी साग न खाकर मिठाइयों पर मन चलाते हैं। बार बार सिनेमा देखते हैं। पार्टियाँ, एवं दावतें देने में अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करते हैं। खाना बनाने के लिए नौकर रखे जाते हैं जबकि उनकी स्त्रियाँ बैठी बैठी गप-शप करती रहती हैं। ताश खेलती है। छोटे मोटे कपड़े घर धोये जा सकते हैं किन्तु ऐसा न करके उन्हें भी धोबियों के यहाँ दिया जाता है। इसी तरह आमदनी का बहुत बड़ा भाग सौन्दर्य प्रसाधनों, साज-सज्जा के सामान में ही खर्च हो जाता है।

आर्थिक समस्याओं की नींव में एक महत्वपूर्ण तत्व है अनावश्यक वस्तुओं की खरीद-दारी। बाजार में जा रहे हैं। तनख्वाह मिले एक-दो दिन ही हुए हैं। वस्तुओं पर ललचाई नजर पड़ी। कुछ चीजें खरीदने की इच्छा हुई। इच्छा के साथ ही उनकी आवश्यकता उपयोगिता की दलीलें स्वयं अपने से की जाने लगीं और चटपट वह खरीदली गईं। इस तरह कई वस्तुयें ऐसी खरीद ली जाती हैं जिनकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती और जो तनख्वाह महीने के अन्त तक चलनी चाहिए थी वह बीच में ही समाप्त हो जाती है। अच्छा है कि खरीद-दारी में कुछ धैर्य रखा जाय, जो चीज आज पसन्द आई उसे आज ही न खरीद कर कुछ समय बाद खरीदा जाय। इससे उसकी आवश्यकता, अनावश्यकता पर विचार करने का समय मिलेगा और इससे कई अनावश्यक वस्तुयें खरीदने से बच जायेंगी। किसी भी चीज को तुर्त-फुर्त इच्छा होते ही खरीद लेना, उपयोगिता अनुपयोगिता का कोई निर्णय न करना बहुधा हमारी आर्थिक तंगी का कारण बनता है। पैसे खर्च करने में, कोई भी वस्तु खरीदने में, जल्दीबाजी करने, विचार न करने से, धन का दुरुपयोग होता है।

> अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ। शब्दों का कर्म से और कर्म का शब्दों से मेल कराओ। —शेक्सपियर
>
> प्रसन्नता तो चन्दन है, दूसरे के माथे पर लगाइये तो आपकी उँगलियाँ अपने आप सुगन्धित हो जायेंगी। —अज्ञात

आजकल के युग में वस्तुओं के बेचने की भी एक कला चल पड़ी है। सेल्समैन, विज्ञापन करने वाले आते हैं। बड़े लम्बे-चौड़े वक्तव्य देते हैं, दलीलें पेश करते हैं, और लोग झट उनकी बात में आकर अनावश्यक सामान खरीद लेते हैं। इसी तरह इनाम आदि की घोषणा करके बेचने का तरीका चल पड़ा है। इस सम्बन्ध में बहुत ही सावधान और संयमित

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

रहना चाहिए। इनाम आदि के लालच में कभी भी नहीं आना चाहिए। यह तो निश्चित ही है कि जो अपनी वस्तु बेचने आया है वह घुमा फिराकर अपने लाभ की ही बात सोचेगा। ऐसे समय जल्दीबाजी में कोई वस्तु नहीं खरीदनी चाहिए।

अक्सर कई बार वस्तुएँ बड़ी सस्ती, नीलाम वास्तविक मूल्य से कम में बिकती है। उस समय कई लोग सस्ते के प्रलोभन में आकर खरीद लेते हैं। और सोचते हैं जरूरत के समय काम आयेगी। किन्तु यह बड़ी भूल है। कोई वस्तु कितनी ही सस्ती क्यों न हो उसे बिना वर्तमान जरूरत के खरीदने में नुकसान एवं पैसे का अपव्यय ही होता है। क्योंकि उन वस्तुओं की या तो कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती, और जब आवश्यकता पड़ती है तब तक वे खराब या नष्ट हो जाती हैं, बिना आवश्यकता के भी वह काम आने लगती हैं। बिना आवश्यकता के समय से पहले जो पैसा उन वस्तुओं में लगाया जाता है उसे किसी अच्छे काम में लगाया और लाभ कमाया जा सकता था, वह उसके कम मूल्य में खरीदने से होने वाले लाभ से अधिक ही होता। इस तरह कुल मिलाकर नतीजा यह निकलता है कि आर्थिक नुकसान और फिर पैसे की तंगी।

> धन फलदायक नहीं होता और न नाम, यश फलदायक नहीं होता और न विद्या। प्रेम ही सर्वत्र फलदायक है, चरित्र ही, कठिनाइयों की संगीन दीवारों को तोड़ कर अपना रास्ता बना लेता है। — स्वामी विवेकानन्द

किसी भी तरह बिना जरूरत की चीजे खरीदने पर आर्थिक समस्या का सामना अवश्य ही करना पड़ता है। जब साइकिल से ही काम चल सकता है तो उसके लिए स्कुटर खरीदकर बड़ी रकम का भुगतान, पेट्रोल का माहवारी खर्चा बढ़ाना अपनी आर्थिक समस्या पैदा करना ही होगा। छोटे से परिवार का दो-तीन कमरों में गुजारा हो सकता हो तो इसके लिए बड़ी सी कोठी किराये पर लेना भूल ही होगी। सामान्य चारपाई पर जब आराम की नींद ली जा सकती है तो फिर बड़े-बड़े कीमती पलंग सोफा सैट खरीदना अपनी आर्थिक स्थिति को कमजोर बनाना ही होगा।

तीन-चार जोड़ी कपड़ों में मजे से काम चलाया जा सकता है तो १५-२० जोड़े कपड़े, सूट आदि बनवाना क्या उसी आर्थिक विपन्नता का कारण नहीं है?

दैनिक जीवन की इन सामान्य बातों के साथ हमारी अपव्यय की मनोवृत्ति शादी, उत्सव आदि में भी बहुत बड़ा रूप धर कर सिर्फ है। लम्बी चौड़ी रकमें स्वेच्छा से, दिखावा, अपने नाम बड़ाई की गरज से बारूद की तरह फूँक देना क्या हमारी आर्थिक समस्या के लिए जिम्मेवार नहीं है? बेचारे कम आय वालों के भी तो शादियाँ उत्सव, संस्कार त्यौहार आदि होते हैं। यदि वे किफायत से काम चला सकते हैं तो हम भी वैसा ही क्यों नहीं कर सकते।

इस तरह विचारपूर्वक देखने पर पता चलेगा कि आर्थिक समस्या कोई बाहर से आई हुई नहीं वरन् मनुष्य की स्वयं की ही पैदा की हुई होती है। यह अनावश्यकताओं की वृद्धि, फिजूलखर्ची, झूँठा दिखावा, बड़प्पन का स्वाँग, खर्च के सम्बन्ध में ठीक ठीक निर्णय करने की बुद्धि का अभाव, आकर्षण, चमक-दमक, बनावट, फैशन में बह जाने का ही परिणाम है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि रहन-सहन का स्तर भद्दा, फूहड़, गंदा और कजूसी भरा हो। आवश्यकता इस बात की है कि पैसे के दुरुपयोग को रोक कर उसे उन्नति, विश्वास, ज्ञान वृद्धि सामाजिक हितों, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, उन्हें स्वस्थ और सबल बनाने में खुले दिल से खर्च करना चाहिए किन्तु मर्यादा का उल्लंघन न हो। कहावत है "लिहाफ देखकर ही पैर फैलाने चाहिए।" बुरी लत व्यसन, कृत्रिमता से बचकर सादगी का जीवन व्यतीत किया जाय। ऐसी चाल चली जाय जो अपने निभ सके और आर्थिक तंगी की समस्या परेशान

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

करें। सादगी में ही सभ्यता, बड़प्पन, विकास, उन्नति की नींव लगती है। संसार के महापुरुषों का जीवन सीधा-सादा रहा है।

आर्थिक समस्या तब और भी चिन्ता एवं परेशानी का कारण बन जाती हैं जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उधार और कर्ज का शरण लेता है। बहुत से लोगों को इसकी आदत सी पड़ी रहती है। किन्तु इससे पैदा होने वाली समस्यायें और भी कठिन होती हैं। उधार लेने पर आवश्यकता से अधिक सामान आ जाता है। दुकानदार अपना खराब, मनचाहा सामान चाहे जिस भाव लगा देता है। ग्राहक की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। उधार की चढ़ी हुई रकम के तकाजे भी [illegible] नहीं अखरते, जब पैसा पास में न हो और आमदनी साधारण हो। अपनी आमदनी कम होने पर खर्चे के लिए उधार की राह पकड़ना दुहरी भूल है। क्योंकि उधार की रकम फिर किस स्रोत से चुकाई जाय, यह भी समस्या उठ खड़ी होती है।

कर्ज से प्राप्त होने वाला धन भी कुछ कम 'बला' नहीं होती। क्योंकि प्रारम्भ में सहज ही मिले इकठ्ठे धन को पानी की तरह बहाने पर भी खर्च करने में जी नहीं दुखता, जबकि कमाये हुये धन का एक-एक पैसा खर्च करने में भी जी दुखता है। हालांकि कर्ज से सहज ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। एक सामयिक सन्तोष और प्रसन्नता भी प्राप्त होती है, किन्तु इसके दूरगामी परिणाम बहुत ही बुरे निकलते हैं। समय पर न चुकाने से कर्ज देने वालों से सम्बन्ध खराब हो जाते हैं। कर्ज का बोझ दिनों-दिन गर्दन दबाने लगता है। चिन्ता एवं परेशानी में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होने लगता है। लोग ताने कसते हैं। वर्तमान जीवन कठिन हो जाता है। क्योंकि जिस आमदनी में खर्च ही नहीं चल पाता उसमें से कर्ज कैसे चुकाया जाय? फलतः जेवर जायदाद, घर का महत्वपूर्ण सामान [illegible] में ही बेचना पड़ता है, या कर्ज देने वालों द्वारा नीलाम किया जाता है। अपनी आमदनी के अतिरिक्त कर्ज, उधार में भूलकर भी हाथ डालना अपने लिए परेशानी, चिन्ता, बलेश मोल लना है।

एक बार ईश्वर चन्द्र विद्यासागर कहीं जा रहे थे। एक छोटे से स्टेशन पर उतरना था, स्टेशन आया और वे उतर गये। उसी स्टेशन पर एक नवयुवक भी उतरा जो एक बक्स के लिए कुली-कुली चिल्ला रहा था। विद्यासागर जी उसके पास आये और बोले लाओ मैं ले चलता हूँ आपके बक्स को। छोटा-सा बक्स था। सादा वेश था उनका। चल दिए। अपना घर आया देख युवक ने उन्हें रुकने को कहा। बक्स लेकर पैसे देने लगा तब विद्यासागर जी ने कहा "मुझे भी यहीं आना था सो आपका बक्स ले आया, पैसे वैसे की कोई आवश्यकता नहीं है।" और चल दिए। सायंकाल इसी गाँव में उनका भाषण होना था। उन्होंने भाषण दिया तो उस नवयुवक ने उन्हें पहचाना और मन-ही-मन बड़ा दुःखी हुआ। सभा समाप्त होने पर उनके पैरों में गिरकर क्षमा मांगने लगा। उन्होंने कहा "भाई इसमें क्षमा की कोई बात नहीं है। किन्तु स्मरण, रखो सदैव अपना काम अपने हाथों से किया करो।"

स्वामी रामानुजाचार्य को उनके गुरु शठकोप स्वामी ने जीव के कल्याण के रहस्यमय मंत्र बताये और उन्हें किसी को बताने की सख्त मनाही करदी। जीव कल्याण और ईश्वर प्राप्ति के गूढ़ रहस्यों को जानकर स्वामी रामानुजाचार्य ने उन्हें जनता को बताना शुरू कर दिया अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया। इस तरह के अमूल्य धन से वे स्वयं ही लाभ नहीं उठाना चाहते थे। जब शठकोप स्वामी को पता चला तो वे बड़े रुष्ट हुए और एक दिन रामानुज को बुलाकर कहा "क्यों रे, मैंने तुझे इस ज्ञान को गुप्त रखने का आदेश दिया था फिर तूने मेरी आज्ञा का उल्लघन क्यों किया। इसका बुरा परिणाम तुझे भोगना पड़ेगा।"

"गुरुदेव जैसी आपकी आज्ञा। इस अमूल्य धन को प्राप्त कर मुझे केवल अपना कल्याण ही अच्छा नहीं लगा। मैंने अपने अन्य मानव भाइयों को भी बाँटना शुरू कर दिया। मुझसे रहा नहीं गया। इस धन को मैं अपने लिए ही रखकर क्या करता, इसीलिए मैंने बांट दिया। मेरे अन्य भाई अज्ञान में पड़े नारकीय यातनायें सहते रहें और मैं अपना ही कल्याण ईश्वर लाभ प्राप्त करलूँ यह भी बहुत बड़ा स्वार्थ है। अब जैसी आपकी आज्ञा होवे वह शिरोधार्य है।" रामानुजाचार्य ने कहा।

शठकोप स्वामी अपने शिष्य की वाणी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने रामानुजाचार्य को सीने से लगा लिया और संसार में ज्ञान, धर्म का प्रचार करने की आज्ञा दी।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* जरा दूसरों का भी ध्यान रखिये ? *

जीवन की बड़ी-बड़ी सफलता, सम्भावनायें उपलब्धियों का आधार हमारे जीने और तरीकों पर निर्भर हैं। हम कैसे चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, सार्वजनिक जीवन की आवश्यक बातों का कितना ध्यान रखते हैं, इसी पर हमारे जीवन का निर्माण होता है। किसी भी क्षेत्र में सफल होने के लिए इन व्यवहारिक बातों में सफल होना आवश्यक है। जो अपने व्यवहार में इन बातों का ध्यान नहीं रखते, दूसरों के हित अनहित का विचार नहीं करते, स्वेच्छाचार अपनाते हैं वे समाज द्रोही कहलाते हैं। इस तरह के समाज द्रोहियों की छोटी-छोटी बातों से भी समाज का बहुत बड़ा अहित होता है। उनका स्वयं का अहित तो निश्चित ही है।

सड़कों, सार्वजनिक रास्तों पर कितने ही लोग इस तरह चलते हैं मानों सड़क उन्हीं के लिए बनाई गई है। कभी बीच में, कभी दायें कभी बांये। आगे पीछे का तो खयाल ही कौन करे। किन्तु होता यह है कि किसी भी सवारी के आने पर वे असन्तुलित हो कर इधर-उधर भागने लगते हैं और साथी से टकरा जाते हैं। इस तरह होने वाली दुर्घटनायें एक सामान्य सी बात बन गई है। थोड़ी सी भूल के कारण जान से हाथ धोना पड़ता है। उधर सवारी के चालक को सजा भुगतनी पड़ती है। गाड़ी टूट-फूट जाती है। छोटी सी भूल के कारण बहुत बड़ी हानि हो जाती है उसी तरह तेज सवारी के चालक भी लापरवाही में किसी से पीछे नहीं होते। वे भी अपनी साईकिल, मोटर, स्कूटर आदि इस तरह फर्राटे से चलाते हैं कि दुर्घटना होने में देर नहीं लगती।

> "अहिंसा पहला, इन्द्रियसंयम दूसरा, जीवों पर दया करना तीसरा, क्षमा चौथा, पांचवा, ध्यान छठा, ध्यान सातवां और सत्य आठवां पुष्प है। इन पुष्पों के द्वारा पूजा कि वे जाने पर ही भगवान संतुष्ट होते हैं, अन्य पुष्प तो पूजा के बाह्य अङ्ग मात्र है।"
>
> —पद्मपुराण

सार्वजनिक जीवन के प्रति उपेक्षा और असावधानी की बीमारी मनुष्य पालित पशुओं, बच्चों तक में फैल गई है। लोग दूध पीने के लालच में पशु पालते हैं किन्तु उनके खर्च से बचने के लिए पशुओं को अकारण छोड़ देते हैं। और ये पशु बाजारों सार्वजनिक स्थानों, रास्तों सड़कों में स्वतन्त्र होकर घूमते हैं। अनाज की ढेरियों, खेतों, सब्जियों की दुकानों पर मुँह मारते हैं। बगीचों को हरियाली फूलों को नष्ट करते हैं। कभी कभी तो बाजार के बीच पशुओं के युद्ध से जन, धन, माल, की भी हानि हो जाती है। पशुओं की इस स्थिति में मनुष्य का हाथ है जो समय पर उन्हें पकड़ कर दूध निकाल लेते हैं और फिर छोड़ देते हैं।

इन मामूली-सी दीखने वाली बातों का जिनसे हमारे समाज, हमारे राष्ट्र का नकशा सामने आता है सुधार किए बिना काम चलेगा। ये गन्दी, स्वेच्छाचार पूर्ण, आदतें भयंकर सार्वजनिक अपराध है। हमारे सार्वजनिक स्वास्थ्य पर इनका कितना बुरा असर पड़ता है यह सहज ही देखा जा सकता है। अस्पताल, औषधालय बढ़ रहे हैं तो साथ में मरीजों और बीमारियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। शहरों में रहने वालों को तो बीमारी दवादारू के लिए भी भोजन पानी की तरह ही एक बंधी हुई रकम खर्च के मद में रखनी पड़ती है। हमारी इन गन्दी आदतों के कारण ही बारबार सफाई होने पर भी शहरों की सड़कों, गलियों सार्वजनिक स्थानों की कैसी गन्दी हालत रहती है यह प्रत्येक नगरवासी जानता है। और इस गन्दगी में रहकर मनुष्य के स्वास्थ्य की कामना करना एक विडम्बना है। सफाई

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

के लिये सरकार नगर पालिका कुछ भी विधान बनाये [illegible] समस्या बने किंतु इनसे तब तक समस्या का समाधान नहीं हो सकता जब तक हम स्वयं सफाई, स्वच्छता, व्यवस्था, सार्वजनिक नियमों पर ध्यान न दें। अपनी विभिन्न गन्दी आदतों का सुधार और [illegible] को इसके लिए प्रेरणा देना एक सामाजिक कर्तव्य है। जनसेवा का एक महान् पहलू है।

सार्वजनिक सड़कों, बाजार, स्टेशन, प्लेटफार्म, प्रतीक्षालय आदि में सफाई करने वाले दिन में दो तीन बार झाड़ू निकालते हैं। सफाई करते हैं किन्तु [illegible] जाकर देखने पर इन्हें सदैव गन्दा [illegible] जाता है। इसका प्रधान कारण है हमारा सार्वजनिक जीवन में सफाई, शिष्टाचार का अभाव?

सार्वजनिक सड़कों, गलियों, रास्तों के किनारों पर रहने वाले लोग जब अपने मकान की छत, [illegible] आदि से बिना देखे भाले ही कूड़ा डाल देते हैं, तो कितने ही लोगों का एक असभ्य स्वागत हो जाता है। इससे लोगों के कपड़े खराब हो जाते हैं कई बार आपस में गाली गलौच, लड़ाई झगड़े तक की नौबत आ जाती है। गन्दगी आदि डालने से राह चलने वालों को परेशानी के साथ ही रास्ते में गन्दगी इकट्ठी हो जाती है और वही गन्दगी चलने वालों के पैरों, मोटर, साईकिल के चलने, हवा के द्वारा उड़ती हैं और चारों और फैल जाती है। दुकानों में रखे हुए खाद्य पदार्थों पर भी वह जमती है जिससे अनेकों बीमारियों का प्रादुर्भाव होता है।

अक्सर लोग, केले सन्तरे आम आदि खा कर छिलकों को सड़क पर, आम रास्तों पर डाल देते हैं। इससे कितने ही लोग फिसल फिसल कर अपने हाथ पैर तुड़ा बैठते हैं। कइयों को तो ऐसी गहरी चोट लगती है कि जीवन से ही हाथ धोना पड़ता है। इसी तरह लोगों में भूँठे पत्तों, आदि सड़कों पर फेंकने की एक आदत सी पड़ गई है। इससे कितनी गन्दगी फैलती है विषैले जीवाणु, मक्खी, मच्छरों को प्रश्रय मिलता है जो अनेकों लोगोंके स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं।

पान खाने वाले लोग जब राह चलते हुए इधर-उधर देखे बिना ही पीक की पिचकारी छोड़ते हैं तो, आगे पीछे, आस-पास चलने वालों के कपड़े खराब हो [illegible] सार्वजनिक स्थानों के फर्श, दीवारों पर होने वाली पच्चीकारी से किसी भी सफाई पसन्द आदमी का जी मिचला सकता है। इसी तरह कफ, थूक, नाक आदि की गन्दगी भी लोग जहाँ-तहाँ छोड़ने में नहीं हिचकिचाते।

रेल के डिब्बों, सिनेमा हालों, प्रतीक्षालयों धर्मशालाओं आदि में मनुष्य की इन असामाजिक गन्दी [illegible] खाली डिब्बे, झूँठे दोने, कुल्लड़ों के क्षत विक्षत टुकड़े, फलों के छिल्के, बच्चों के टट्टी पेशाब थूक पीक आदि की गन्दगी जहाँ तहाँ फैला देना मनुष्य की गन्दी असामाजिक आदतों का परिचय देते हैं।

इसी तरह अपने धूम्रपान आदि विभिन्न शौकों को लोग इस तरह स्वतन्त्रता के साथ पूरे करते हैं कि वे ये भी सोचने का प्रयत्न नहीं करते कि इससे उनके स्वास्थ्य, रुचि पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा।

हैरानी होती है उससमय जब प्रातःकाल सड़कों, गलियों के दोनों ओर बनी हुई नालियों पर लोग अपने बच्चों को शौच निवृत्ति के लिये बिठा देते हैं। कई छोटे-छोटे बच्चे तो बीच गली में ही बैठा दिए जाते हैं। इतना ही नहीं जरा और जल्दी सबेरे देखा जाय तो बड़े-बड़े लोग भी नालियों में शौच करते देखे जाते हैं। शहरों की गन्दगी में लोगों की ये बुरी आदतें ही मुख्य हैं।

मन्दिर मस्जिद, गुरुद्वारे आदि को अपना पूजा-स्थल मानने वाले लोग जब इन स्थानों के आसपास ही टट्टी पेशाब करते देखेजाते हैं तो इनलोगों कीभक्ति पर सन्देह होने लगता हैं। भगवान के दर्शन करने वाले, कीर्तन करने वाले घन्टों जप-तप करने वाले जब मन्दिरों में अपने पैरों, वस्त्रों के माध्यम से गन्दगी लाते हैं, ओने कोने में थूकते हैं, बच्चों को टट्टी पेशाब करने की छूट रखते हैं तो उनकी श्रद्धा की न्यूनता सहज ही प्रकट हो जाती है। ●

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

* दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावें ! *

दाम्पत्य जीवन का महत्व मनुष्य को अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य जीवन की नींव लगती है। दाम्पत्य जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित प्रयास है, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्नेह व आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं, शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उसे सरस, सरल और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पद-पद पर नई आशा, नई उमंग, नव-[illegible] रही रहती हैं। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहिणी, के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने वाले अत्यन्त कोमल धागे इतने कोमल भी होते हैं कि [illegible] से झटके में टूट जाते हैं और फिर सम्पूर्ण दाम्पत्य जीवन का सुन्दर महल लड़खड़ा कर ही गिर पड़ता है। पति-पत्नी के व्यवहार की सामान्य-सी भूलें, असावधानी अथवा अज्ञान से परस्पर के मधुर सम्बन्ध कटुता, द्वेष, प्रतिद्वन्दिता में बदल जाते हैं। गृहस्थ-जीवन में फैले हुये गृहकलह, असन्तोष, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े में मनुष्य की उन्नति, विकास, उत्कर्ष सब धरे ही रह जाते हैं। वस्तुतः इनका आधार व्यवहार भी सामान्य-सी बातें ही होती हैं, जिनका ध्यान रखा जाय तो दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से सहज ही बचाया जा सकता है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटाई पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्त्री की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, वस्त्र, ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुकताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझा-सी लगती है और वे उनकी उपेक्षा तक करने लग जाती है।

स्त्रियाँ सदैव यह चाहती हैं कि पति उनके काम, रहन-सहन आदि की प्रशंसा करें। वस्तुतः पति के मुँह से निकली हुयी प्रशंसा की एक शब्द पत्नी को वह प्रसन्नता प्रदान करता है जो किसी बाह्य साधन, वस्तु से उपलब्ध नहीं हो सकती। पति की प्रशंसा पाकर स्त्री अपनत्व तक भी भूल जाती है। दाम्पत्य जीवन में जो परस्पर प्रशंसा करते नहीं अघाते वे सुखी सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

जिन स्त्रियों को पतियों की कटु आलोचना सुननी पड़ती है वे सदैव यह चाहती हैं कि कब यह यहाँ से हटें। और पति की अनुपस्थिति में वह अन्य माध्यमों से अपने दबे हुए भावों की तृप्ति करती है। सखियों के साथ गप-शप लड़ाती है। तरह-तरह के बनाव शृंगार करके बाजार में निकलती है। और यहाँ तक कि कई तो परपुरुषों की प्रशंसापात्र बनकर अपने भावों को तृप्त करने का भी प्रयत्न करती हैं। जो प्रेम और प्रशंसा उसे पति से मिलने चाहिए थे वह उन्हें अन्यत्र ढूँढने का प्रयत्न करती हैं। कई स्त्रियाँ अन्य मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं। उन्माद, भूतव्याधा, हिस्टीरिया स्नायु रोगों से पीड़ित हो जाती हैं। अथवा क्रोधी चिड़चिड़े स्वभाव की झगड़ालू बन जाती हैं। घर उन्हें सूना-सूना और उजड़ा हुआ-सा लगता है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

जहाँ स्त्री को पति की प्रेमयुक्त प्रशंसा के स्थान पर कटु आलोचनायें सुननी पड़ती हैं, वहाँ सहज प्रेम तो धीरे-धीरे समाप्त हो ही जाता है। पति गृह में नारी के लिए जो आकर्षण, प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण होना चाहिए वह निराशा, खिन्नता, रुखाई और श्मशानवत नीरवता में बदल जाता है, जहाँ सद्भावना, प्रेम, आत्मीयता के जीवन से रहित पति पत्नी के जड़ शरीर हिलते-डुलते नजर आते हैं।

इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही विषैला है। पुरुषों को अपने काम से थककर आने पर घर में प्रेम एवं उल्लास का उमड़ता हुआ समुद्र लहराना चाहिए जिसमें उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति परेशानी घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु-आलोचना, व्यंग-बाण, बच्चों की धरपटक, हाय हल्ले का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या हालत होगी, भुक्त-भोगी इसका सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

अच्छे-अच्छों का धैर्य उस समय डिग जाता है जब पत्नी के कटु कर्कश व्यवहार का सामना पुरुष को लगातार करना पड़ता है। फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय अपनी पत्नी की आलोचना और रुखाई से तंग आकर वेश्याओं के यहाँ जाने लगा था। उसने एक अन्य स्त्री से भी अपना सम्बन्ध बना लिया था। लिकन जैसा महापुरुष अपने अच्छे स्वभाव और सद्गुणों के बल पर दाम्पत्य-जीवन को काफी समय तक निभाता रहा किन्तु अन्त में उसे अलग होना पड़ा। महान् विचारक टालस्टाय अपनी स्त्री के कर्कश स्वभाव को सहते रहे किन्तु अन्त में बयासी वर्ष की उम्र में परेशान होकर घर छोड़कर चले गये और रास्ते में ही निमोनिया के प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गयी।

इस तरह के अनेकों उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। पत्नी की कर्कशता से तंग आकर व्यक्ति यदि आदर्शवादी होता है तो वह दार्शनिक विचार तथा क्रियाओं की ओर मुड़ जाता है। जैसे सुकरात, भतृहरि आदि। इसके विपरीत साधारण मानसिक शक्ति और सामान्य बुद्धिवाला हुआ तो वह वेश्या-गामी, शराबी, व्यसनी बन जाता है। जिन लोगों को घर में स्त्रियों का प्रेम, सद्भाव नहीं मिलता वे अन्यत्र उस प्रेम की पूर्ति करना चाहते हैं। अथवा नशेबाजी आदि व्यसनों में अपनी परेशानी भुलाना चाहते हैं। घर के कटुतापूर्ण, रुक्ष, आलोचना प्रधान वातावरण के कारण कितने ही लोगों का जीवन अपराधी-बन जाता है।

पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है। और वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। इससे दाम्पत्य-जीवन की सुख शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में आत्म-हत्या, हत्या, धोखे-बाजी के रूप में कई भयंकर परिणाम भी मिलते हैं। अखबारों में आये दिन इस तरह के समाचार पढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है। इससे बुरे पक्ष का भी गुजारा हो जाता है।

कुछ समय पूर्व अनेकों सदस्यों का मिला-जुला सम्मिलित परिवार सुख शान्तिपूर्वक अपने दिन गुजारता था, सबका निर्वाह भली प्रकार होता था, अनेकता में एकता को साध भी पूरी होती थी। किन्तु अब तो बड़े सम्मिलित परिवारों की बात तो दूर परस्पर पति-पत्नी में ही एका, समता, सामंजस्य नहीं है। इसका कारण है परस्पर अधिकार की भावना, आपाधापी और व्यक्तिगत स्वार्थ का दृष्टिकोण, सामंजस्य की भावना का अभाव।

वस्तुतः एक से दो अथवा अधिक व्यक्तियों का निर्वाह तभी हो सकता है जब उनमें परस्पर आपा-धापी की भावना न हो। अपना स्वार्थ, अपना सुख अपना लाभ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के संकीर्ण

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

दृष्टिकोण को छोड़ने में ही पति-पत्नी या परिवार के जीवन की गति सम्भव है। घर में तना-तनी या लड़ाई झगड़ा होने पर बाजार में जाकर मिठाई खाने वाले, पत्नी को दुःखी, असन्तुष्ट, परेशान छोड़ कर मौज मजा करने वाले, मित्रों में जाकर हँसी खुशी मनाने वाले पति कभी भी अपनी पत्नी की सद्भावना और आत्मीयता प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह दिन भर काम से थके हुए पुरुष को समय पर आवश्यक सेवा सहायता सहानुभूतिन देकर सखियों में गप-शप लड़ाने वाली, पड़ौसिन के यहाँ जाकर बातें बनाने वाली या घर में कुहराम मचा देने वाली स्त्री, दाम्पत्य-जीवन के नीड़ में ही आग सुलगा देती है। इसकी ज्वालाओं से दग्ध पुरुष की निराशा, झूठा अवसाद और फिर विरक्ति के उच्छ्वासों में दाम्पत्य जीवन की सभी स्वर्गीय सम्भावनायें नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।

पति-पत्नी का एक समान सम्बन्ध है जिसमें न कोई छोटा न कोई बड़ा। जीवन यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्नहृदय साथियों की तरह ही होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्व है। पुरुष जीवन-क्षेत्र में पुरुषार्थ और साहस के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद व्यवस्था और साधन सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमानवश पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दाम्पत्य-जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर भावनाओं का अभाव भी है।

दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा होने का एक कारण विवाह और सम्बन्ध तय होने की गलत परम्परायें भी हैं। अक्सर माता पिता द्वारा केवल जातीय नियम या ऊपरी बातें देखकर ही विवाह सम्बन्ध तय हो जाते हैं। किन्तु इससे विवाह का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसी तरह नई सभ्यता के भावुकता और अन्धप्रेम पर आधारित अनुभव-शून्य विवाह सम्बन्धों के दुष्परिणाम और विफलता कुछ कम हानिकारक नहीं होते।

उक्त दोनों ही आधार गलत हैं। एक अनमेल विवाह है जिसमें दम्पति के विचार भाव मानसिक स्तर में भिन्नता रहना स्वाभाविक है। दूसरे में विवाह एक बच्चों जैसा खेल बनकर रह जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि विवाह सम्बन्ध में गुण कर्म, स्वभाव का समुचित मेल मिलाया जाय। गुण कर्म और स्वभाव की प्रेरणा से होने वाले सम्बन्ध चिरस्थायी मधुर और सत्परिणाम देने वाले होते हैं। सावित्री ने गुणों से प्रभावित होकर सत्यवान को अल्पायु होने पर भी अपना पति चुना था। गुण और कर्तव्य पर आधारित दम्पत्ति के जीवन की अनेकों समस्यायें सहज ही सुलझ जाती हैं।

स्मरण रहे दाम्पत्य-जीवन कई सदस्यों का एक घुला मिला जीवन है, जिसमें प्रत्येक का अपना-अपना महत्व और स्थान है। दाम्पत्य-जीवन में स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने सपनों की दुनियाँ में रह कर आकाश कुसुम नहीं तोड़ने चाहिए। अपने आपको ही बड़ा, कमाऊ, बुद्धिमान और उपयोगी मानकर अहंकार करना, हर काम का श्रेय स्वयं ही लेना, दूसरों की परवा न करते हुए अपनी ही चलाना, अपनी ही पसंदगी, को अधिक महत्व देना, दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा करना है। शान्ति, प्रेम, आनन्द, प्रसन्नता के साथ सहजीवन ही दाम्पत्य-जीवन का आधार होना चाहिए, जहाँ त्याग, उदारता, सहिष्णुता, उत्सर्ग, आत्मीयता भी हो। लेकिन किसी एक पक्ष के अनीति या अन्याय की राह पर चलने का विरोध भी दूसरे को करने का अधिकार है। मन्दोदरी ने रावण का, तारा ने बालि की नीतियों का विरोध भी किया था।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

बच्चों का सुधार

बच्चों में पैदा होने वाली खराब आदतें, बुराइयों का कारण उनके पूर्वाग्रह, संस्कार, मूल प्रवृत्तियाँ तो हैं ही किन्तु इस सम्बन्ध में माँ-बाप का असंयत व्यवहार, अदूरदर्शिता, अज्ञान भी एक बहुत बड़ा कारण है। बहुत से माँ-बाप अपने बच्चों के मचलने, जिद् करने की शिकायत किया करते हैं। और इससे वे बड़ी परेशानी भी महसूस करते हैं। इसके पीछे घर में अशान्ति, क्लेश, मारपीट, झल्लाहट आदि के प्रसंग आये दिन घटते रहते हैं। बच्चों को इस गुस्ताखी के लिए दोषारोपण, ताड़ना, तिरस्कार आदि का अवलम्बन किया जाता है। किन्तु विवेकपूर्वक देखा जाय तो बच्चों को जिद्दी और उद्दण्ड बनाने में अभिभावकों का ही बहुत बड़ा हाथ होता है। बच्चे तो उस नवजात कोमल पौधे [illegible] जिसे शिक्षित संस्कृत करने [illegible] कर माली सुसंस्कृत रूप देता है। माली की भूल, अज्ञान अथवा लापरवाही से सुन्दर दीखने वाले उद्यान भी बाहड़ जंगलों में परिणित हो जाते हैं। अच्छे भले दीखने वाले पौधे बेडौल और कुरूप लगते हैं।

> "सज्जन पुरुषों के पहले चित्त में और बाद में शरीर में बुढ़ापा आता है। असज्जन पुरुषों के शरीर में ही बुढ़ापा आता है उनका मन कभी बूढ़ा नहीं होता, अर्थात् उनसे तब भी भोगेच्छा नहीं छूटती है।" —पंचतंत्र

अक्सर माँ-बाप प्रारम्भ में अधिक लाड़-प्यार अथवा उदारतावश, उचित अनुचित का ध्यान रखे बिना ही बच्चों की विभिन्न मांगों को पूर्ण करने लगते हैं। इतना ही नहीं कई माँ बाप तो गर्वपूर्वक कहते हैं "मैं नहीं चाहता मेरे बच्चे दुःखी रहें किसी तरह का अभाव महसूस करें।" जब बच्चे इस अत्यधिक उदारता के वातावरण में पलने लगते हैं तो उनके मन और मस्तिष्क पर वैसा ही प्रभाव पड़ने लगता है। जिस स्तर पर माँ बाप उनकी आवश्यकतायें पूर्ण करते हैं, वही [illegible] है। किन्तु [illegible] खर्चे, बदलती हुई परिस्थितियों अथवा आकर्षण कम होने पर बच्चों के साथ व्यवहार में भी परिवर्तन होने लगता है। पहले जितनी उदारता से बच्चों की आवश्यकता पूर्ति का ध्यान रखा जाता था वैसा बाद में नहीं रहता, किन्तु बच्चों का मानसिक स्तर पूर्व जैसा ही बना रहता है। जिस वातावरण में उनका पालन पोषण पहले हुआ उसी की आगे भी अपेक्षा रखते हैं। पूर्व अभ्यास जन्य आदतों से प्रेरित होकर बच्चे वैसी ही माँग भी करने लगते हैं। उधर माँ बाप से उनकी माँग की पूर्ति नहीं होती। इसमें [illegible] माँ बाप द्वारा भी [illegible] शुरू हो जाती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। बच्चों को दोष दिया जाता है, उनकी आदतों की आलोचना की जाती है।

विचार विवेक से शून्य बालक कभी-कभी दूसरों की देखा-देखी भी कुछ अनावश्यक माँगें कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का ध्यान, प्यार दुलार और स्नेह से किसी दूसरे पहलू पर केन्द्रित कर देना चाहिये। उन्हें किसी खेल में लगा दिया जाय। समझदार बच्चों को समझा भी देना चाहिए। कई माँ बाप जो ऐसी स्थिति में बच्चों को ताड़ना देते हैं, उनकी माँगों ठुकराते हैं उन्हें बुरा कहते हैं वे वस्तुतः अपने बच्चों में मचलने, जिद् करने की आदत डालते हैं [illegible] और यही [illegible] विरोध करने पर उन्हें उत्तेजना मिलती है और अधिकाधिक जिद्दी बन जाते हैं। यही खराब आदत

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

—: गायत्री विद्या के अमूल्य ग्रन्थ रत्न :—

हजारों ग्रन्थों की खोज, अगणित गायत्री-उपासकों के सहयोग एवं तीस वर्ष की व्यक्तिगत साधना के फलस्वरूप विनिर्मित इन ग्रन्थों की एक-एक पंक्ति अनुभव के आधार पर लिखी गई है। गायत्री उपासना से समुचित लाभ उठाने के इच्छुकों के लिए यह साहित्य अनुभवी गुरु के समान पथ-प्रदर्शन करता है। इस विषय की सभी जिज्ञासाओं तथा शंकाओं का इन पुस्तकों में समुचित समाधान मौजूद है।

१-गायत्री महाविज्ञान (तीनों भाग) मू० १०॥)

प्रथम भाग—गायत्री विद्या का वैज्ञानिक आधार, गुप्त शक्तियों का रहस्य, नित्य उपासना, अनुष्ठान विधि, गायत्री सम्बन्धी शङ्काओं का समाधान, अनेक कष्टों का विवरण एवं अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए लगाये जाने वाले बीज-मन्त्रों का साधना विधान, आत्म साक्षात्कार एवं ऋद्धि-सिद्धियों का आधार, स्त्रियों को विशेष उपासना विधियाँ आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों का सुबोध ढङ्ग से प्रतिपादन। मू० ३॥)

द्वितीय भाग—गायत्री द्वारा वाम मार्गी तांत्रिक विधान के अनुसार मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण मुद्रा आदि के अनेक विधानों का वर्णन तथा गायत्री गीता, गायत्री स्मृति, गायत्री संहिता, गायत्री उपनिषद्, गायत्री रामायण, गायत्री हृदय, गायत्री पंजर, गायत्री लहरी, गायत्री सहस्रनाम आदि का संग्रह। मू० ३॥)

तृतीय भाग—गायत्री महामंत्र द्वारा २४ प्रकार के योगाभ्यासों का साधना विधान। जप-योग, ऋजु-योग, प्राण-योग शब्द-योग नाद योग, हठयोग, कुण्डलिनी-योग, षटचक्रवेधन की साधनाऐं तथा अन्नमय-कोष, प्राणमय-कोष, को सिद्ध करने के रहस्यमय मार्ग दिग्दर्शन। मू० ३॥)

२-गायत्री यज्ञ विधान (दोनों भाग) मू० ५)

प्रथम भाग—गायत्री यज्ञ का विज्ञान, लाभ एवं महत्व का तर्क, प्रमाण, शास्त्र एवं साइन्स के आधार पर बहुत ही खोजपूर्ण वर्णन। मू० २)

द्वितीय भाग—गायत्री यज्ञ करने की शास्त्रोक्त विधि, प्रक्रिया, जलयात्रा, मंडप प्रवेश, वेदी पूजन कुशकण्डिका, अग्निस्थापन, आहुति मन्त्र, पूर्णाहुति, वसोधरा, घृत अवघ्राण, भस्मधारण, अभिसिंचन आदि का पूरा विधि विधान, जिसे समझकर बड़े यज्ञों का आचार्यत्व किया जा सकता है। मू० २)

३-गायत्री चित्रावली (दोनों भाग) मू० ३॥)

प्रथम भाग—विविध प्रयोजन के लिए गायत्री माता का ध्यान करने योग्य आर्ट पेपर पर छपे २४ तिरंगे चित्र तथा सरल भाषा में उनका महत्व प्रतिपादन मू० १॥)

द्वितीय भाग—व्याहृति समेत गायत्री के २६ अक्षरों में सन्निहित २६ महान् आदर्शों को २६ श्लोक, २६ लेख एवं २६ आर्ट पेपर पर छपे तिरंगे चित्रों द्वारा समझाया गया है। मू० २)

गायत्री का मन्त्रार्थ मू० १॥)

अनेकों ग्रन्थ में, अनेकों ऋषियों द्वारा गायत्री महामंत्र के अनेकों प्रकार के किए हुए अर्थों का संग्रह, राक्षसराज रावण का किया हुआ अर्थ भी इसमें है।

कुछ विशिष्ट पुस्तकें

सूक्त संहिता मू० १॥)

इस पुस्तक में चारों वेदों से ऐसे ४० सूक्त संग्रह किये गये हैं जिनके पाठ एवं मनन से मनुष्य की ४० भौतिक सांसारिक कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। वैदिक मन्त्र विद्या की यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण पुस्तक है।

छै रुपये से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। इससे कम मूल्य की पुस्तकों का खर्च १।)

पता—अखण्ड-ज्योति प्रेस, मथुरा।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सुदृढ़ — संकल्प

[भी० वीर सक्सेना]

❖

तुम चाहे पूजो अँधियारा सींचा करो तिमिर की धारा ,
जब तक हम जीवित हैं किरणों का अपमान न होने देंगे ।

❀ ❀ ❀

कोई रोक नहीं सकता सूरज की अगवानी करने से ,
जीवन के तम भरे कक्ष में ज्योतित दीप-शिखा धरने से ,
मुक्ति-प्रिय स्वीकार नहीं कर सकते किसी दृष्टि पर बन्धन ,
जब तक हम जीवित हैं नयनों का अपमान न होने देंगे ।

❀ ❀ ❀

जिसने मन के बन्धन बाँधे उसको सुरभि भेंट करदी है ,
मौसम ने माँगा तो उसकी फूलों से झोली भर दी है ,
कितनी भी हो शक्ति किन्तु पतझर से सन्धि नहीं कर सकते
जब तक हम जीवित हैं सुमनों का अपमान न होने देंगे ।

❀ ❀ ❀

सृजन शील हैं हम नव रचना से नूतन उपलब्धि खोजते ,
किसी दूसरे के श्रम से अर्जित सुविधाएँ नहीं भोगते ,
इतनी क्षमता नहीं किसी में प्रगति रोक ले सन्मार्गों की ,
जब तक हम जीवित हैं चरणों का अपमान न होने देंगे ।

❀ ❀ ❀

तुमने मार्ग रोकना चाहा है आने वाले प्रभात का ,
आक्रामक ? हम तुमको उत्तर देंगे इस विश्वासघात का ,
हम देते हैं आश्वासन मानव मन को उज्वल भविष्य का ,
जब तक हम जीवित हैं सपनों का अपमान न होने देंगे ।

—राष्ट्र दूत से

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.